CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

स्वामी विवेकानन्द

जुलाई १९८८

५० पैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

वर्ष ४७ : अंक ७ : आषाढ २०२३

प्रधानसंपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक
श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए., शास्त्री, तर्कशिरोमणि

विषयानुक्रमणिका

१	पोषक देव	[वैदिक प्रार्थना]	१३१
२	वेदकालीन विमानशास्त्र	श्री श्रुतिशील शर्मा	१३२
३	त्रिविध दुःख-निवृत्तिका परमसाधन 'पुरुषार्थ'	श्री ब्रह्मचारी जगन्नाथ पथिक	१३६
४	अध्यात्म और आरोग्य	श्री डॉ. गुप्ता	१४१
५	वेदमें शरीर-विज्ञान	श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा	१४५
८	ऋग्वेदका सुबोध भाष्य	पं. श्री. दा. सातवलेकर	९७ से ११२

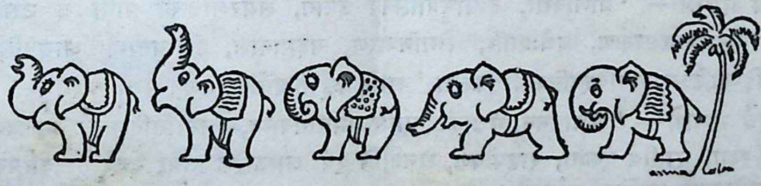

'वैदिक धर्म' वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५० डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.-'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानवजीवनके रहस्योंसे भरपूर

एक संग्रहणीय खजाना

जी हां, मानवशरीरकी रचना विधाताके कौशल्यकी चरम सीमा है। शरीर स्वयंमें एक रहस्यमय विश्व है, जिसके कई रहस्योंका स्फोट आजतक भी नहीं हो पाया है।

मानवशरीरविज्ञानके विज्ञोंने इस शरीरका जितना विश्लेषण आज किया है, उससे कहीं अधिक और यथार्थ विश्लेषण हमारे प्राचीन ऋषिमहर्षियोंने इस शरीरका किया था। उन्होंने आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन भागोंमें मानव शरीरके सारे रहस्योंका उद्‌घाटन किया है। इन सारे रहस्योंको यदि आप जानना चाहते हैं, तो अवश्य पढिए श्री पं. श्री दा. सातवलेकर लिखित अथर्ववेदके सुबोध भाष्यके पांचों भाग। वे पांच इसप्रकार हैं—

(१) ब्रह्मविद्या प्रकरण। (२) मातृभूमि और स्वराज्यशासन। (३) गृहस्थाश्रम।
(४) आरोग्य और दीर्घायुष्य। (५) मेधाजनन, संगठन और विजय।

इनमें प्रथम चार भाग विक्रीके लिए तैय्यार हैं, अन्तिम एक भाग अभी प्रेसमें है। उनके भी शीघ्र छपनेकी आशा है।

प्रथमभागमें— 'ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग, पाशवी सामर्थ्यका आत्मिकशक्तिसे प्रतिकार, गुह्य अध्यात्मविद्या, पूजनीय ईश्वर, आत्मशक्ति, ब्रह्माण्ड देह, आत्मज्योति, मुक्तिका मार्ग, मुक्तिका अधिकारी,' आदि कई आध्यात्मिकज्ञानके रहस्योंका संग्रह है।

दूसरे भागमें— 'वैदिकराष्ट्रगीत, राजाका कर्तव्य, राष्ट्रका अभ्युदय, राजाका चुनाव, कर, दुष्टका नाश, शत्रुपर विजय, युद्धनीति, विजयप्राप्ति, स्वशक्तिका विस्तार, युद्धसाधन' आदि कई राज्यशास्त्र-विषयक बातोंका वर्णन है।

तीसरे भागमें— 'पवित्र गृहस्थाश्रम, कुलवधू एवं पतिके गुण, वर और कन्याके गुण एवं उनका चुनाव, वैदिकविवाहका स्वरूप, धनार्जन, गोरक्षण, आदर्शपतिपत्नी, वीरपुत्रकी उत्पत्ति, रमणीय घर, भाग्यप्राप्ति' आदि गृहस्थाश्रमके सम्बन्धमें कई अत्यन्त उपयोगी बातोंकी विशद व्याख्या है।

चौथे भागमें— 'प्राणविद्या, दीर्घायुप्राप्तिका उपाय, अमरशक्तिकी प्राप्ति व उसका उपाय कल्याणकी प्राप्ति, आत्मरक्षण, वर्चःप्राप्ति, रोगनिवारण, यक्ष्मानाश, विषयनाश, आनुवंशिक रोगोंकी चिकित्सा, हिप्नोटिज्म, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा' आदि कई विषयोंका वर्णन है।

पांचवें भागमें— 'मेधाजनन, मेधाकी प्राप्ति, मित्रतावर्धन, वनस्पतिविज्ञान, ब्रह्मचर्य, संगठन, मातृभूमिकी रक्षा, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रपोषण, धनप्राप्ति एवं आन्तरिक तथा ब्रह्मशक्तियों पर विजय' आदि कई उल्लेखनीय बातोंका वर्णन है।

सभी भाग मूलमंत्र, अर्थ, भावार्थ, तथा स्पष्टीकरणसे युक्त डबलक्राऊन ८ पेजी साइजके क्रीमवोव पेपरसे समृद्ध एवं आकर्षक गेटअपसे सम्पन्न हैं। प्रत्येक भागकी कीमत १० रु. (डा. व्य. पृथक्) है। भागोंकी छपाई सीमित संख्यामें ही हुई है। अतः न पानेकी निराशासे बचनेके लिए आज ही अग्रिम धन भेजकर पार्सलसे या वी. पी. से मंगायें। मुफ्त सूचीपत्रके लिए लिखें—

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, पोस्ट- 'स्वाध्याय मंडल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओ३म्   आषाढ : विक्रमी संवत् २०२३

वैदिकधर्म

पोषक देव

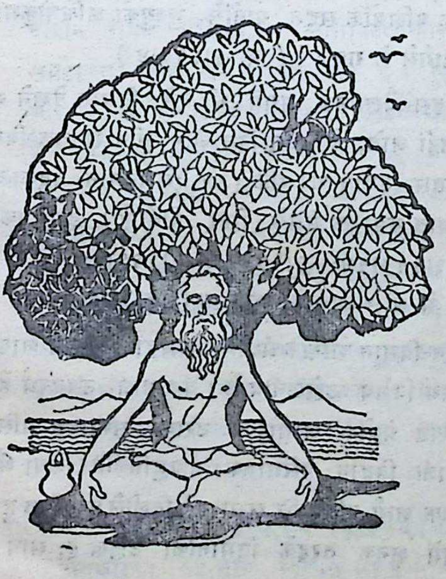

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥
(ऋ. ७।५९।१२)

(सुगंधिं पुष्टिवर्धनं त्र्यम्बकं) सुगंधकारक तथा पुष्ट करनेवाले कल्याण करनेवाले देवकी (यजामहे) हम पूजा करते हैं, वह हमें (मृत्योः बन्धनात्) मृत्युके बन्धनसे उसी प्रकार (मुक्षीय) छुडाये, जिस प्रकार (उर्वारुकं इव) खरबूजा पक जानेपर बेलसे छूट जाता है। वह देव हमें (अमृतात् मा) अमृतसे न छुडाए।

पोषक देवकी पूजा करनेसे उपासक पुष्ट होकर सर्वत्र यशस्वी होता है। वह कभी भी मृत्युके बंधनोंमें नहीं पडता, अपितु वह सदा अमरताकी ओर बढता जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदकालीन विमानशास्त्र

(लेखक— श्री श्रुतिशील शर्मा)

☆

प्रायः सभी वेदविद्वानोंकी यह धारणा है कि संसारमें ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जिसका उल्लेख वेदोंमें न हो। वस्तुतः वेदोंमें सभी प्रकारके संशोधन हैं, आवश्यकता है केवल उनके आधारपर संशोधन करनेवालेकी। कई बार ऐसा भी होता है कि संशोधक संशोधन करते हैं पर उनके अकालमें ही कालकवलित होजानेपर उसी संशोधनका श्रेय किसी दूसरेको मिल जाता है। वेदोंमें यज्ञ द्वारा वृष्टि विज्ञानका वर्णन भी बहुत पैमाने पर हुआ है। जब जरूरत हो पानी बरसा लिया जाए, और जरूरत पडनेपर बन्द कर दिया जाए, इसकी विद्या भी वेदोंमें है। इस विद्यासे हमारे प्राचीन ऋषि मुनि परिचित थे। यही कारण है कि उस समय अति-वृष्टि और अनावृष्टिके कारण देशमें दुर्भिक्षका डर लोगोंको नहीं था। आज भी इन्दौर निवासी श्री पं. वीरसेन वेदश्रमी यज्ञ द्वारा जलवर्षणकी विद्यामें संशोधन कर रहे हैं और उनका दावा है कि उन्होंने इसके अन्तर्गत कई रहस्योंका पता भी लगा लिया है।

इन्हीं प्रकारके शास्त्रोंमें विमानशास्त्र भी एक है। आजका संसार विमानके आविष्कारका सारा श्रेय राईट बन्धुओंको देता है। पर हरएक वेदका अध्ययन करनेवाला जानता है कि आजके विमान कोई सर्वथा नवीन आविष्कार नहीं हैं। ऋग्वेदमें अश्विनीकुमारके सूक्तोंमें जगह जगहपर विमानोंका वर्णन आया है। अश्विनी कुमारोंके रथ उडनेवाले थे और वे पंखोंके सहारे उडते थे—

‘हे अश्विनौ ! जब आपका रथ पक्षियोंके समान आकाश में उडता है तब आपके घोडे अन्तरिक्षमें जाते हैं।’

(ऋ. १।४६।३)

‘हे अश्विनौ ! आपके रथमें शीघ्रगामी पक्षी जोडे गए हैं, वे श्येन (बाज) पक्षी आपको इधर ले आवें।’

(ऋ. १।११८।४)

अश्विनी कुमारोंके पास उडनेवाली नावें (हवाई जहाज) भी थीं—

‘हे अश्विनौ ! तुमने तुग्रपुत्रके लिए अपने सामर्थ्यसे पंखयुक्त नौका महासागरमें बनाई, वह पक्षीके समान थी। उस नौकासे उडनेवाले तुम दोनों सहज हीसे समुद्रके पार उडकर चले गए।’ (ऋ; १।१८२।५)

यह नौका जलमें तो चलती ही थी, पर आकाशमें भी उडती थी।

इन अश्विनीकुमारोंने अपने (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) अन्त-रिक्षमें उडनेवाले और (अपोदकाभिः) जलमें संचार करनेवाले विमानोंसे तुग्र राजाके पुत्र भुज्युको बचाया। अश्विनीकुमारोंके पास ऐसे विमान थे जो थल, जल और आकाश तीनों जगह संचार करते थे।

‘तीन रात्री और तीन दिनतक बिना कहीं रुके अतिवेगसे दौडनेवाले पक्षियोंके सदृश यानोंसे भुज्युको अश्विनीकुमार आकाशमार्गसे ले गए।’ (ऋ. १।११६।४)

आज इस वैज्ञानिक युगमें भी ऐसे विमान देखने या सुननेमें नहीं आते, जो तीन दिन और तीन राततक बिना रुके लगातार उडान भर सकें। पर ऐसे विमान वेदकालमें थे, यह बात उपरोक्त मंत्रसे सिद्ध होती है। इसी प्रकार ऋग्वेद १।११७।१४; १।११६।५; १।११९।४; ६।६२।६; ७।६९।७ में भी अश्विनीके हवाई जहाजोंका उल्लेख है।

प्राचीन विमान शास्त्रके ग्रंथोंमें ‘भारद्वाज विमान शास्त्र’ नामक ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय है। वह आज उपलब्ध है। हस्तलिखित ग्रंथोंके आधारपर उसका सम्पादन प्रसिद्ध आर्यसमाजी विद्वान् परिव्राजक ब्रह्ममुनिजीने किया और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्लीसे प्रकाशित हुआ है। उसमें अनेक तरहके विमानोंका उल्लेख है, साथ ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनको बनानेका ढंग भी बताया है। कठिनाई है सिर्फ उसमें बताए गए पारिभाषिक शब्दोंको समझनेकी। उसमें एक ऐसे आश्चर्यजनक विमानका भी वर्णन है जो पारेसे चलता था। वह पारा भी जलकर फिर पारा ही बन जाता था अर्थात् विमानके उडते समय जो पारा जलता था, वह जला हुआ भाग किसी विशेष यंत्र द्वारा फिर पारा बना दिया जाता था। इस प्रकार उस विमानमें एकबार पारा भर दिए जानेपर फिर उसमें पारा भरनेकी जरूरत नहीं होती थी। ऐसे विमानकी कल्पना भी आज हमारे लिए अशक्य है।

आज सारा संसार राईट बन्धुओंको विमानके आविष्कर्ताके रूपमें जानता और मानता है। राईट बन्धुओंके विमानने अपनी सबसे पहली उडान सन् १८९८ में भरी थी। पर यह कम ही लोगोंको मालूम होगा, कि उससे भी पहले सन् १८९५ में एक विमानने उडान भरी थी और उसकी उडान सफल भी रही। उस विमानका नाम 'मरुत्सखा' था और उस विमानके आविष्कर्ता थे बम्बईस्थित सर. जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्सके एक शिक्षक श्री **शिवकर बापूजी तळपदे**। ये एक महाराष्ट्रीय सज्जन थे। उनके बारेमें पूनासे निकलनेवाले मराठी दैनिक 'केसरी' के २ सितम्बर १९६२के अंकमें डॉ. वि. भा. गोवंडेने एक छोटासा लेख लिखा लिखा था, उसका अक्षरशः अनुवाद यहां दिया जा रहा है—

'मैं ७४ वर्षका हूँ और बम्बईमें ४० वर्ष रहनेके कारण बम्बईके बारेमें मैं बहुत कुछ जानता हूँ। कुछ संशोधनके दौरान रॉयल एशियाटिक सोसायटी और मराठी ग्रंथ संग्रहालयके अनेक ग्रंथ मैंने पढ डाले हैं। सरकारी रॅकर्ड्स और टाइम्स जैसे अखबारोंके पुराने फाइल भी मैंने पढ डाले हैं। बम्बईका इतिहास बतानेवाले कई ग्रंथ भी मैंने पढ डाले हैं। इस सबको बतानेमें मेरा हेतु यह है कि इतनी जानकारी होते हुए भी बम्बईमें घटित एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटना मुझसे अज्ञात ही रही, यह एक आश्चर्य ही है।

वह घटना क्या है, यह बतानेसे पहले मैं यह बता देना आवश्यक समझता हूँ कि वह घटना मुझे मालूम कैसे हुई। बम्बई और पूनामें ब्रिटिश कौंसिलके दो ग्रंथालय हैं। पूना स्थित ग्रंथालयसे पिछले सप्ताह 'हिन्दु स्क्रिप्चर्स' नामक एक ग्रंथ मेरे देखनेमें आया।

ग्रंथकार वासुदेव विसनदोयाल

ग्रंथकारका यह नाम विचित्र सा है। पर यह विष्णुदयालका अपभ्रंश है ऐसा मेरा विचार है। लेखक मॉरिशस द्वीपमें रहते हैं। पहले इस द्वीपमें पैदा होनेवाली शक्कर बहुत परिमाणमें हमारे देशमें आती थी। वह द्वीप फ्रांसका एक उपनिवेश था, पर अब वह स्वतंत्र है। श्री दयालकी शिक्षा भारतमें हुई है। वे कलकत्ता विश्वविद्यालयसे एम. ए. हैं। सुप्रसिद्ध डॉ. मुकर्जीके पास रहकर उन्होंने संस्कृत और वैदिक वाङ्मयका गहन अध्ययन किया है। इसी कारण हिन्दूसंस्कृतिका उन्हें अभिमान है।

प्रोफेसर दयालके लेख 'हिबर्ट जॉर्नल' और 'कान्टम्पररी' इन सम्मानित पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते हैं। 'एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना' नामक बृहत्काय ग्रंथमें हिन्दूधर्मकी जानकारी देनेवाला दयालका एक लेख भी प्रसिद्ध हुआ है। दयालके 'हिन्दु स्क्रिप्चर्स' नामक ग्रंथको मेकमिलन कंपनीने प्रकाशित किया है।

'आधुनिक भारतीयके द्वारा निर्मित विमान' इस शीर्षकके अन्तर्गत दयालके पुस्तकके पृष्ठ ३० पर एक घटना दी हुई है।

१९५२ में मैंने जब एक भारतीयके द्वारा विमान बनानेकी बात सुनी तो मुझे बडा आश्चर्य हुआ। "आब्जर्वर" नामक समाचारपत्रके ६ अक्टूबर १९५२ के अंकमें मुझे निम्न जानकारी प्राप्त हुई।

विमान तैयार करनेवाले गृहस्थ महाराष्ट्रीय थे। उनका नाम शिवकर बापूजी तळपदे था और वे बम्बईके चिराबाजारके डुक्करवाडी नामक स्थानपर रहते थे। उनका संस्कृतभाषाविषयक अध्ययन बहुत गम्भीर था। वैदिकग्रंथोंका उन्होंने मनन किया था। वे एक महान् वैज्ञानिक थे और सर जमशेदजी जीजीभाई स्कूल ऑफ आर्ट्समें शिक्षक थे।

वैदिकमंत्रोंके आधारपर तळपदेने एक विमान तैयार किया था। बम्बईके आर्ट सोसायटीके टाऊन हालमें एक प्रदर्शनीमें तलपदेका विमान भी प्रदर्शित हुआ था। विमानकी लोगोंने बडी प्रशंसा की।

लोगोंको विमान बहुत पसन्द आया है यह देखकर उन्होंने अपना संशोधन जारी रखा। पारेके दबावसे विमान आकाशमें उड सकता है या नहीं, यह उनके संशोधनका विषय था। विमानकी रचना कैसे की जाए इसका विवरण 'भारद्वाजसंहिता' और ऋग्वेदके १०।१९० में मिलता है। इस मंत्रमें बताया है कि सूर्यकी किरणें विमानकी उडानोंके दौरान उनमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शक्ति भरती हैं। (आज भी सोलार बैटरीवाले स्पुतनिकोंसे बेतारके संदेश भेजे जाते हैं) सूर्यकिरण और पारेसे शक्ति प्राप्त करनेमें तलपदे पूर्णतया यशस्वी हुए। तलपदेकी पत्नी भी विदुषी थीं। उनकी और एक अन्य ईंजिनीयरकी भी सहायता श्री तलपदेको प्राप्त थी।

आठ जातिके विमान

वैदिकग्रंथोंमें पुष्कर आदि आठ जातिके विमान बताए गये हैं (आज भी बोईंग, सिडले, हॉकर, बांवर, मिग इत्यादि विमान सुननेमें आते हैं) वैदिककालमें विमान बिजलीसे चलते थे। तलपदेने अपने विमानका नाम 'मरुत्सखा' रखा था।

'तलपदेका विमान तैय्यार हो जाने पर १८९५ में चौपाटी पर विमानको उन्होंने लोगोंके सामने उडाया। उडान भरते हुए विमानको देखनेवालोंमें बडौदा महाराज सय्याजीराव गायकवाड, न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे और सेठ लालजी नारायणजी भी थे। इन बडे लोगोंने १५०० फुटकी ऊंचाईतक जाकर फिर उसी जगह पर सुरक्षितरूपसे वापस आए हुए विमानको देखकर श्री तलपदेकी बडी प्रशंसा की और उनको बहुतसी आर्थिक सहायता भी प्रदान की।

तलपदेका दुःखद अन्त

दुर्भाग्यवश तलपदेका कुटुम्ब अकाल ही कालवश हो गया, उसके साथ ही तलपदेका संशोधन कार्य भी समाप्त हो गया। बादमें तलपदे भी चले गए और उनके सम्बन्धियोंने वह विमान एक ब्रिटिश कम्पनीको बेच दिया।'

बम्बईके प्रसिद्ध वकील श्री माणिकराव तलपदे और भाई जीवनजी गलीमें रहनेवाले ९० वर्षके वयोवृद्ध श्री सुन्दरराव वैद्य मेरे परिचित हैं। वैद्य तो १८९५में आर्टस्कूलमें पढते थे। श्री प्रियोलकर एक प्रसिद्ध संशोधक हैं। इन सबके द्वारा शिवकर बापूजी तलपदेके बारेमें जानकारी इकट्ठी करनी चाहिए। १८९५ सन्में 'मरुत्सखा' विमानके उडानकी खबर तत्कालीन किसी समाचारपत्रमें है या नहीं, यह देखना चाहिए। तथा "आब्जर्वर" पत्रने ५७ वर्षोंके बाद यह खबर किस कारण छापी, यह भी जानने योग्य है।

यदि उपरोक्त बात सत्य है तो प्रथम भारतीय विमानके आविष्कारकके रूपमें श्री तलपदेका महान् गौरव किया जाना चाहिए (क्योंकि राईटबन्धुओंके विमानने १८९८में पहली उडान भरी थी।)

श्री गोवंडेकी उपर्युक्त लघुलेखके आधारपर इन पंक्तियोंके लेखकने भी इधर उधर खोज की। मैंने (लेखकने) इस बारेमें श्री पं. श्री. दा. सातवलेकरसे भी पूछता की। उन्होंने लेखकको बताया कि सर जे. जे. आर्ट्स स्कूलमें श्री तलपदे श्री पंडितजीके कलागुरु थे। उस समय श्री तलपदेने एक विमान उडाया था, जो सफल रहा। श्री तलपदे कईबार वेदमंत्रोंका अर्थ जाननेके लिए श्री पं. सातवलेकरजीके पास आए भी थे। श्री तलपदेने वेदमंत्रोंके आधारपर 'विमान-शास्त्र' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा था, जिसे पंडितजीने जांचा और उसमें कुछ सुधार भी किए थे। जो बादमें प्रकाशित भी हुआ था। अतः श्री तलपदेका विमान आविष्कार केवल एक गप्प नहीं माना जा सकता, वह एक तथ्य है। प्राचीनकालमें विमान विद्यापर अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। कई ग्रन्थोंका उल्लेख 'यंत्रसर्वस्व' नामक ग्रन्थके लेखकने अपने ग्रन्थमें किया है। विद्वानोंकी जानकारीके लिए उनके नाम मैं नीचे दे रहा हूँ—

यंत्र-सर्वस्वके वैमानिक प्रकरणमें पुरातन ग्रंथोंकी सूची

१. क्रियासारः
२. शौनकीयम् (शौनककृत)
३. लोहतंत्र
४. दर्पणप्रकरणम्
५. विमान चंद्रिका
६. व्योमयानतंत्रम्
७. यंत्रकल्प
८. व्योमयानार्कप्रकाश
९. यानबिन्दुः
१०. खेटयानप्रदीपिका
११. मणिमद्रकारिका
१२. लोहप्रकरण
१३. शक्तितन्त्रम्
१४. दर्पणशास्त्रम्
१५. लोहसर्वस्वम्
१६. धातुसर्वस्वम् (बोधायनकृत)
१७. संस्काररत्नाकर
१८. मणिप्रकरणम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१९. शब्दमहोदधिः
२०. पटकल्पः
२१. यंत्रप्रकरणम्
२२. अग्नितत्वलहरी (आश्वलायनकृत)
२३. पटप्रदीपिका
२४. चारनिबन्धनग्रंथः
२५. शक्तिसर्वस्वम्
२६. ऋतुकल्पः
२७. वर्णसर्वस्वम्
२८. मूलार्कप्रकाशिका
२९. क्षीरीपटकल्पः
३०. शणनिर्यासचंद्रिका
३१. नालिका निर्णय
३२. मणिकल्पप्रदीपिका
३३. बृहत्काण्डम्
३४. पट्टिनिबन्धनम्
३५. खेटविलासग्रंथः
३६. पार्थिवपाककल्प
३७. उद्भिज्जतत्वसारायणम्
३८. गतिनिर्णयाध्यायः
३९. लोहतत्वप्रकरणम्
४०. सौदामिनीकला (ईश्वरकृत)
४१. शब्दनिबन्धनम्
४२. निर्यासकल्पः
४३. नामर्थकल्पसूत्रम्
४४. सर्वशब्दनिबन्धनम्
४५. खेटसर्वस्वम्
४६. द्रावकप्रकरणम्
४७. खेटयंत्रम्
४८. लोहरत्नाकर
४९. निर्णयाधिकार
५०. मूषकल्पः
५१. कुण्डकल्पः
५२. कुण्डनिर्णयः
५३. भस्त्रिकानिबन्धनम्
५४. मुकुरकल्पः
५५. दर्पणकल्प;
५६. पराङकुशः
५७. सम्मोहक्रियकाण्डम्
५८. अंशुबोधिनी
५९. प्रपंचसारः
६०. शक्तिबीजम्
६१. यंत्रकल्पतरुः (लल्लकृत)
६२. शक्तिकौस्तुभम्
६३. मणिरत्नाकर
६४. पटसंस्काररत्नाकरः
६५. विषनिर्णयाधिकारः
६६. अशनकल्पः
६७. पाकसर्वस्वम्
६८. लोहधिकरणम्
६९. बोधानन्दकारिका (बोधानन्दकृत)
७०. लोहरहस्यम्
७१. परिभाषाचंद्रिका
७२. विश्वम्भरकारिका
७३. संस्कारदर्पणम्
७४. प्रलयपटलम्
७५. षडंगविवेकः
७६. रघुदयः
७७. शक्तिसूत्रम् (अगस्त्यकृत)
७८. शुद्धविद्याकलापम् (आश्वलायनकृत)
७९. ब्रह्माण्डसारः (व्यासकृत)
८०. अंशुमतंत्रम् (भरद्वाजकृत)
८१. छन्दकौस्तुभः (पराशरकृत)
८२. कौमुदी (सिंहकोठकृत)
८३. रूपशक्तिप्रकरणम् (अंगिरसकृत)
८४. करकप्रकरणम् (अंगिरसकृत)
८५. आकाशतंत्रम् (भरद्वाजकृत)
८६. लोकसंग्रह (विसरणकृत)
८७. प्रपंचलहरी (वसिष्ठकृत)
८८. जीवसर्वस्वम् (जैमिनीकृत)
८९. कर्माब्धिपारः (आपस्तंभकृत)
९०. रुकहृदयम् (अत्रिकृत)
९१. वायुतत्त्वप्रकरणम् (शकटायनकृत)
९२. वैश्वानरतंत्रम् (नारदकृत)
९३. धूम्रप्रकरणम् (नारदकृत)
९४. ओषधिकल्पः (अत्रिकृत)
९५. वाल्मिकिगणितम् (वाल्मिकिकृत)
९६. लोहशास्त्रम् (शाकटायनकृत)
९७. रहस्यलहरी (सिद्धनाथ)

यदि इन पुस्तकोंके आधारपर संशोधन किया जाय, तो अवश्य नये नये रहस्योंका उद्‌घाटन हो सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिविध दुःख–निवृत्तिका परमसाधन....

‘पुरुषार्थ’

(लेखक— श्री ब्रह्मचारी जगन्नाथ पथिक, श्री अरविन्द आश्रम, पांडीचेरी)

(·)

१३ दिसम्बर १९५९के धर्मयुगमें प्रकाशित, इस शीर्षकके लेखमें लिखा जा चुका है कि— पुरुषका अर्थ अथवा एकमात्र काम्यवस्तु दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति है। इस दुःख-निवृत्तिके अनेक उपाय हमें इतस्ततः भूमण्डलपर प्रचलित मिलते हैं; एवं इन उपायोंको बताने तथा इनका प्रसार करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति यह प्रतिज्ञा करता है कि- उसका प्रदर्शित मार्ग ही प्रशस्त है। कौनसा पथ प्रशस्त है, वाद–विवादके इस भँवरमें न फँस कर मुमुक्षुको अपने कल्याणकी कामनासे, सर्वशास्त्र प्रदीप–पातञ्जलयोगकी शरण लेना ही सुचारु रहेगा।

योग कितने हैं ? दुर्भाग्यसे, भँवरके समान यह भी एक न निकल सकनेवाला वृत्त है; जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ गीताके अनुसार ही योगके इतने भेद हैं जिन्हें देख कर भय लगता है। गीताके शांकरभाष्यके प्रत्येक अध्यायकी समाप्ति पर निम्न योगोंके नाम स्पष्टतः लिखे मिलते हैं यथा– १ अध्याय ‘ विषादयोग ’ का कथन करता है; २ सांख्ययोग; ३ कर्मयोग; ५ कर्मसंन्यासयोग; ६ ध्यानयोग; ७ ज्ञानविज्ञानयोग; ८ तारकब्रह्मयोग; ९ राजविद्याराजगुह्ययोग; १० विभूतियोग; १२ भक्तियोग; १३ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग; १४ गुणत्रयविभागयोग; १५ पुरुषोत्तमयोग; १७ श्रद्धात्रयविभागयोग; १८ मोक्षसंन्यासयोग। इस ग्रन्थ पर संसारकी सभी भाषाओंमें हुए अनुवाद मिलते हैं; और प्रत्येक भाषामें मनमाने ढंगसे किए अनेक भाष्य भी मिलते हैं। तो क्या ये सभी भाष्य भी मौलिक हैं– इस पर पाठकवृन्द स्वयं निश्चय करें। ये सब अनेक भाष्य तथा योगके भेद उस दशामें देखनेमें आ रहे हैं जब कि गीता गत यह श्लोक स्पष्ट ऐसा कह रहा है कि—

न बुद्धिभेदं जनजनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ,
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्। २-२६

अर्थात् योग्यताके अनुसार वाञ्छित फल प्राप्तिकी आकांक्षासे संलग्न जनसाधारणमें, विद्वान् व्यक्ति बुद्धि भेद (विभिन्नता) को उत्पन्न न करे; किन्तु स्वयं भी शास्त्र-विधिका पालन करते हुए—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

वर्णाश्रम धर्म–कर्तव्योंको पालन करते हुए उन अज्ञ-जनोंको भी (उनकी बौद्धिक योग्यताके अनुसार) कर्म-काण्डमें प्रवृत्त रखे : यहि ऐसा न किया जाय तो समस्त सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था ही नहीं बिगडेगी, प्रत्युत मानवकी मनुष्यताकी संरक्षिका आध्यात्मिकताका ही विलोप हो जाएगा। इसके साथ यदि ‘ योग ’ शब्दके अर्थोंको देखा जाए तो इसके ४२ अर्थ हैं; कौनसा अर्थ कहां पर उपर्युक्त हो सकता है यह देखना तो उस विद्वान्का कार्य है जिसे जनताको एकत्वके सूत्रमें बांधते हुए– दुःख-निवृत्तिकी ओर ले चलना है। यहां पर ऐसे विद्वान् ही पथप्रदर्शन कर सकते हैं जिन्होंने, ‘ सा विद्या या विमुक्तये ’ ऐसी विद्याका अध्ययन करके उसे जीवनमें मूर्त कर लिया हो; केवल शब्दजालके आडम्बरमें फँसे, अहंमानी व्यक्ति न तो निज–कष्टकी निवृत्त कर सकते हैं, न दूसरोंकी। विज्ञ भर्तृहरि कथित– ‘ बोद्धाराः मत्सरग्रस्ताः ’ तथा—

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित्–किंचिद्बुधजनसकाशादवगतम्,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात् स्वाभाविक अल्पज्ञताके वशीभूत प्रत्येक मनुष्य स्वयंको बहुज्ञ या सर्वज्ञ भी मान बैठता है; परन्तु उत्कृष्ट ज्ञानियोंके सत्संगसे उसकी अहंमन्यताका मद, ज्वरके समान जब उतर जाता है तब वह अपनेको अज्ञ ही जानता है। दूसरी बात यह है कि 'बोद्धा' शब्दसे तात्पर्य यहाँ पर शास्त्रके शब्दमात्रके ज्ञातासे है न कि 'आत्मवेत्ता' से; मत्सर आदि तो 'आत्मवेत्ता' में रह ही नहीं पाते, ये सभी दुर्गुण 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' की ज्योतिसे ऐसे ही झड पडते हैं जैसे कि पतझडके संसर्गसे वृक्षोंके पत्ते झड पडते हैं।

इस प्रकार हमारे हाथमें एक कसौटी आ गई, जिसके द्वारा निश्चय कर सकते हैं कि कौन सा साधन दुःख निवृत्ति का है? जो उपाय दुःख निवृत्ति न करके, जिस किसी प्रकारसे लेशमात्र भी हिंसा-असत्य- अधर्मादिमें प्रवृत्ति कराते हैं वे साधनाभास हैं; वे निवृत्तिके जनक 'धर्म' के, योगके, वा दुःख निवृत्तिके यथार्थ साधन नहीं हैं। जैसे—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्यागः'

योग, २-३५ सूत्र; में ऋषि कहते हैं कि योगके प्रथम अङ्ग यमके उपाङ्ग 'अहिंसा' को, जीवनका अङ्ग बनाकर, जो कोई मन, वचन, कर्मके द्वारा सिद्ध कर लेता है तब उसके संसर्गसे स्वाभाविक वैर रखनेवाले जीव चूहा-बिल्ली, सर्प-नेवला, एवं सिंह आदि हिंसक जीव भी उस समय अपनी इस हिंसकवृत्तिको त्याग देते हैं; और अहिंसकसे तो कोई वैर रखता ही नहीं। यह एक अंगकी सिद्धिका फल है, जिसके अनेकों दृष्टान्त पाठकवृन्दने देखे सुने होंगे।

यह मनीषी पतञ्जलिकी 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' का ही चमत्कार है जिसके द्वारा अनुशासित योग सूत्रोंमें, योगशब्द समाधिके अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है; किसीके साथ संयोग आदिकके अर्थमें प्रयुक्त नहीं हुआ। अतः हम योगके-कर्म-योग, ध्यान-योग, सांख्य-योग आदिक अनेक योगोंसे बने भँवरमें न फँस कर, अब एक राजपथ पर आकर खडे हो गए हैं; जिस पर हम, ज्ञान और कर्मके लगे दो चक्रोंवाले रथ पर बैठ कर चल अथवा दौड भी सकते हैं, ज्ञान और कर्मके दो पंख लगा कर पक्षीके समान मोक्षधामकी ओर उड सकते हैं, अथवा ज्ञान और कर्मके दो पगोंसे चल सकते हैं। यह योग केवल ज्ञान तथा क्रियाके संमिश्रित दो अङ्गोंसे मिला, अष्टाङ्ग योगके नामसे अनुशासित है। ऋषि स्वयं कथन करते हैं—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञान-
दीप्तिराविवेकख्यातेः (२-२८)

अर्थात् योगके सब अङ्गोंका, मन-वचन-कर्ममें एकता लाकर यथावत् अनुष्ठान करनेसे ज्ञानका प्रकाश तब तक बढता ही जाता है, जब तक कि विवेक ख्याति (दुःख निवृत्ति का एकमात्र उपाय 'पुरुष-प्रकृति विवेक') का उद्भव अथवा दर्शन नहीं होता। इससे अधिक स्पष्ट सुचारुता अष्टाङ्ग-योगकी और क्या हो सकती है? इस प्रकार, दुःखकी आत्यन्तिकी निवृत्तिकी प्राप्तिरूप मोक्ष वा निर्वाणतक पहुँचनेको लिए मुमुक्षुके पास अब दो पंख, वा दो पैर, किंवा रथके दो चक्र हस्तगत हो गए हैं; यदि वह आकाशमार्गसे जाना चाहे तो 'अभ्यास वैराग्य' के दो पँख लगा कर अथवा अभ्यास वैराग्यके दो पक्षोंसे युक्त समाधिके वायु यानमें बैठकर उड जाए; अथवा पैदल जाना चाहे तो अष्टाङ्ग योगके निरापद राजपथसे चलता चले; किंवा पगडण्डी (शार्ट-कट) से जाना चाहे तो 'तप-स्वाध्याय-ईश्वर-प्रणिधानके' क्रियायोगका अनुसरण करे।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि फिर भी सबके लिए एक मार्ग ही तो न हुआ; और वही नाना योगोंका झगडा बना ही रहा, परन्तु ऐसा नहीं है। देखिए, महिमन् स्तोत्रके रचयिता शिवभक्त यक्षके शब्दोंमें—

रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

अर्थात् संसारमें रुचिकी विचित्रता और बुद्धिकी विषमताके होते हुए भी, मानवमात्रका ध्येय है, दुःख निवृत्ति-पूर्वक स्थायी सुखके परमधाम-परमानन्द सागरकी प्राप्ति करना; जैसे नदी, नद, नाले, निर्झरके रूपोंमें विद्यमान जल, अन्तमें समुद्रमें जा मिलता है वैसे ही दुःखनिवृत्तिके सब साधनोंको रुचिवैचित्र्यके कारण प्रत्येक मानव अपनाता है, और वे सभी साधन-योगज समाधिरूप समुद्रमें आकर, नाम रूपोंको त्याग कर समाधि-विलीन हो जाते हैं; समाधि उन सबको आत्मसात् कर लेती है। यदि तथाकथित अन्यान्य साधनोंके द्वारा समाधिका आविर्भाव नहीं होता तो वे साधन अधूरे हैं- पूर्ण नहीं हैं। २ + २ = ४ के अनुसार दुःख निवृत्तिका यथार्थ मार्ग तो एक ही है और वह है योग सूत्रोक्त 'चित्तवृत्तिनिरोध' अर्थात् 'समाधिः' (योग. १-२)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किन्तु इस पथपर चलनेकी शक्ति सब मनुष्योंमें समान नहीं होती, भिन्न-भिन्न होती है, न्यूनाधिक भी होती है; इस कारण एक ही पथपर जब हम किसीको पैदल, किसीको रथसे, किसीको मोटरकारसे, किसीको वायुयानसे जाता हुआ देखते हैं तो निज अल्पज्ञता अथवा भ्रमके कारण, उस पथको भिन्न समझ लेते हैं। सूत्रकार इसी तथ्यको इन शब्दोंमें कह रहे हैं कि– 'तीव्रसंवेगानामासन्नः' अर्थात् द्रुतगतिवाले व्यक्ति जिनकी चाल तेज है, उनका पथ शीघ्र समाप्त हो जाता है– उनको समाधिकी प्राप्ति शीघ्र हो जाती है (१–२१), तथा तारतम्यके अनुपातसे– तीव्रतम, तीव्रतर, तथा मन्दगतिवाले, जिन्हें हम उत्तम–मध्यम–निकृष्ट श्रेणीका कह सकते हैं, इसी क्रमसे समाधियोंको प्राप्त करके अपना पथ पार करते हैं (योग. १–२२)।

आंशिक सर्वज्ञता प्राप्त, अतिमानव श्रेणीके महामान्य महर्षि पतञ्जलिने अपने साक्षात्कारके आधारपर ही, सर्वज्ञता आदि परमदिव्य गुणोंकी पराकाष्ठारूप भगवानकी प्राप्तिका उपाय, एकमात्र समाधि– निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः। (१-४७) के द्वारा प्राप्त 'विवेक ख्याति' की दृढतासे प्राप्त 'धर्ममेघ समाधि' को बताया है—

प्रसंख्यानेऽप्य कुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेः धर्ममेघः समाधिः (४-२९)।

इस भाँति हमारे समक्ष प्रकाशस्तम्भके समान निश्चित सिद्धान्त आ गया कि— कष्टमयी अवस्थासे निकलनेका एकमात्र सीधा उपाय योग (क्रिया–योग २–१ सूत्र) है जिसके द्वारा क्लेश नष्ट होकर समाधिका आविर्भाव होता है—

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च (२-२)

किन्तु बलाबलके अनुसार ही प्रत्येकको समाधिकी सिद्धि हो पाती है।

ध्यान रहे कि समाधियोंकी भी श्रेणियाँ हैं; योगसूत्रोंमें समाधि–सिद्धिके उपायोंको दर्शाते हुए, उत्कृष्ट साधकोंके लिए अभ्यास वैराग्यका मिश्रित उपाय बताया गया है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः (१–१२)

तदुपरान्त दूसरा साधन है 'ईश्वरप्रणिधानाद् वा; १–२३' सर्व शक्तिमान् भगवान्के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण करके जीवन यात्रा करना; किन्तु आगे पुनः बलपूर्वक कहते हैं—

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्; (२-४५)

अर्थात् समाधिकी सिद्धि ईश्वर प्रणिधानके द्वारा हो जाती है। इसपर भाष्यकार व्यासने लिखा है—

समाधिसिद्धिः तत्फलं च भवति योगिनः।

अर्थात् समाधिकी सिद्धि तथा समाधिज फल 'विवेकख्याति' की प्राप्ति भी योगीको होती है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि दुःख निवृत्ति किंवा क्लेशतनूकरणके लिए समाधिकी सिद्धि होना परमावश्यक है।

समाधिमें क्या होता है तथा समाधिका क्या स्वरुप है? इसको जाननेके और हृदयङ्गम करनेके लिए उन भूल तत्त्वोंकी ओर दृष्टिपात करना होगा जो, प्रत्येक निर्माण और विनाशमें कार्य करते रहते हैं; फिर यह निर्माण या विनाश लघु हो वा महान्। जैसे कि महानूतम–निर्माण सृष्टि उत्पत्तिके समय भागवत–ईक्षण, सर्वप्रथम परम प्रकाशमान् 'महत्' या 'महान्' को प्रकट करता है, जिसमें ऋत और सत्य नामक दो मूलतत्त्व सम्मिश्रित रहते हैं; एवं स्वयं 'महान्' भी अव्यक्त त्रिगुणोंका उत्कृष्ट परिणाम है। अगली समस्त सृष्टिका उत्पादन, महान्में छिपे ये दोनों तत्त्व ही कर डालते हैं– भागवत ईक्षणकी क्रियासे प्रेरित हुए–हुए। इसी भाँति साधनोंके समष्टि भूत योगाङ्ग भी, क्रिया एवं ज्ञानके सम्मिश्रणसे जो फल उत्पन्न करते हैं वह है समाधि; और जैसा कि योग सूत्र कह रहा है—

'निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः, १–४७; के अनुसार, समाधिकी निर्विचार कहलानेवाली अवस्थामें योगीको अध्यात्मप्रसाद प्राप्त होता है। यह अध्यात्मप्रसाद क्या वस्तु है, कैसे प्राप्त होता है? इसकी विशेषता क्या होती है? इत्यादि पर योगसूत्र ही प्रकाश डाल रहे हैं, जिनका संक्षिप्त भाव इस प्रकार है– अध्यात्मज्योति (केन उपनिषद् उक्त उमा) 'उमा' की ज्योत्स्ना पाकर, साधारण मानवबुद्धि उद्‌भासित होकर असाधारण रूपसे दिव्य बन जाती है (१–४८); इसकी विशेषता होती है कि यह श्रुत (श्रौत– आगम) और अनुमान प्रमाणकी सहायतासे प्राप्त नाम–रूपके साधारण ज्ञानको प्राप्त करानेवाले श्रवण, चिन्तन, मनन, निदिध्यासनसे परे– अतिपरे अतीन्द्रिय (साधारण इन्द्रियोंसे गोचर न हो सकनेवाले) तत्त्वोंका साक्षात्कार करा देती है, करतलधृत बेरके समान। योगिजन इस विज्ञानको स्वतः प्रमाण एवं परम प्रत्यक्ष मानते हैं; 'ऋत-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

म्भरता' का गुण आ जानेसे यह योगजबुद्धि असत्यके अंश तकको ग्रहण नहीं करती। इस विशेषताके आजानेसे संसारका सूक्ष्मतम –विचित्रतम–एवं उत्कृष्टतम 'प्रकृति–पुरुष विवेक' नामक विज्ञान मानवको प्राप्त होता है (१–४९)।

इससे योगीको ७ तथ्योंकी प्राप्ति होती है (२–२७)। इतना ही नहीं, वरन् ये विवेकज सस्कार, अविवेकके संस्कार मात्रको चित्तमें पैठने ही नहीं देते (१–५०); पश्चात् इन संस्कारोंके निरोधसे निर्बीज (निर्विकल्प) समाधिका उद्‌भव होता है (१–५१)। किन्तु इस सबका यह तात्पर्य नहीं है कि इस विज्ञान प्राप्तिमें कोई क्रिया या कर्म नहीं होता; यह विवेक, उस सूक्ष्मतमा क्रिया–परम्पराका ही परिणाम विशेष होता है।

पूर्वकथित ऋत और सत्यके नियमोंको समक्ष रख कर ही, योगके आचार्योंने योगके ज्ञान वा ध्यानयोग तथा हठयोग ये दो विभाग किए हैं; हठयोग, अर्थात् स्थूल–क्रिया वा स्थूलकर्म–प्रधान साधन; जो कि ज्ञान वा ध्यान योगका सहायक है; और ये दोनों एक दूसरेकी न्यूनताकी पूर्ति करके, योगको पूर्ण बनाते हैं। इसलिए न कोई अङ्ग इनमेंसे छोटा है न बडा, न निकृष्ट है न उत्कृष्ट ही; जैसे दायाँ बायाँ हाथ, दाईं–बाईं आँख इत्यादि एक दूसरेके सहायक होनेसे समान आदरके पात्र होते हैं। सूत्रकारकी चमत्कृत दृष्टि यहाँपर चूकी नहीं है; अनुशासित योगसूत्रका प्रथम पाद यद्यपि उत्कृष्ट साधकोंके लिए ही विशेष रूपसे लिखा गया है; फिर भी '**अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः** १–१२' सूत्रमें 'अभ्यास' पद क्रियाका द्योतक है जैसा कि अगले सूत्रसे स्पष्ट कर दिया है, 'तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः' १-१३ अर्थात् निरुद्ध अवस्थामें स्थित रहनेका प्रयत्न करना (यत्न परम्परा) ही अभ्यास है। इससे स्पष्ट हो रहा है कि, क्रिया–कर्म सहायक है, ज्ञान–विज्ञान प्राप्तिमें; इस प्रकार पातंजलयोगमें कर्म करना निषिद्ध नहीं है– ज्ञान प्राप्तिका साधन है।

क्योंकि ज्ञानयोगियोंके लिए प्रथमपादकी रचना कर देनेके पश्चात् पुनः द्वितीयपादको प्रारम्भ ही– '**तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः**' २–१ सूत्रसे किया है; जिससे स्पष्ट ही यह प्रकट होता है कि विदेह तथा प्रकृतिलयकी श्रेणियोंसे इतर जनसाधारणको क्लेशमुक्त करनेके लिए ऋषिप्रवरने यह द्वितीयपाद निर्मित किया। तथा इसी पादमें कथित अष्टाङ्गयोगमें आसन-प्राणायाम तो प्रत्यक्षतः क्रिया या कर्मयोग किंवा हठयोगके मुख्य अंग हैं; यद्यपि अन्तरङ्ग साधनभूत धारणा, ध्यान, समाधि, संयमोंमें भी सूक्ष्मतमा बौद्धिक तथा मानसिक क्रिया होती ही है, किन्तु वह, अन्तःकरण चतुष्टयकी अव्यक्त क्रिया है जो कि दिव्य-दृष्टि-प्राप्त योगीको ही प्रत्यक्ष रूपसे साक्षात् हो सकती है। एवं सूक्ष्मतमा-क्रियाका क्षेत्र तो निरोध-समाधि असंप्रज्ञातमें भी, प्रथम निरुद्ध संस्कारका अस्त तथा दूसरेका उदय होना, और इस क्रम-परम्पराका निरन्तर प्रवाहित रहना, रजोगुणी वृत्ति-क्रियाके अंशका स्पष्टतया द्योतक है। इस प्रकार यह सिद्धान्त हमारे समक्ष आया कि न तो केवल ध्यानयोग ही, दुःख निवृत्तिका साधन बन सकता है, न हठयोग वा कर्मयोग ही। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' आदि प्रचलित पदावलियोंके द्वारा जो केवल ज्ञान-योगकी श्रेष्ठताका बखान करते, तथा हि कर्मकी हीनता प्रदर्शित करते हैं; पाठक ऊपर कथित विवरणसे स्वयं निर्णय कर ले सकते हैं कि इसमें सार वा तथ्य कितना है और क्या है?

इस प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि— ज्ञान-योग तथा क्रिया-योग मिलकर ही, कृशतनूकरण करनेवाली समाधिको उत्पन्न करते हैं। समाधियोंके विषयमें यह बात विशेष ध्यान देने-योग्य है कि—

वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् संप्रज्ञातः (१–१७)

तथा—

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः (२–४२);

एवं—

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्ये वार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का (२–४३);

किं च—

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता (ज्ञातव्या), २–४४।

इन सूत्रोंमें कथित ५ प्रकारकी समाधियोंमें क्रमशः स्थूल क्रियाका अभाव होता जाता है; जैसे स्थूल सवितर्क समाधिमें शब्द, अर्थ, ज्ञान इन तीनोंका विकल्प (भान) बना रहता है; इससे आगे सविचार, निर्विचार, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत समाधियोंमें ये विकल्प क्षीण पडते–पडते, असम्प्रज्ञात समाधिमें सब लुप्त हो जाते हैं। दिग्दर्शि-

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नार्थ यह सब मैंने अति संक्षेपसे इसलिए वर्णन कर दिया है कि साधकवृन्द यह भलिभांति हृदयङ्गम कर लें, कि ज्ञान और क्रियासे सम्मिश्रित योग–समाधि है— आत्यन्तिकी दुःख निवृत्तिका परम साधन बनकर 'पुरुषके अर्थ' को सिद्ध करती है। मेरा उद्देश्य यहां पर योग तथा समाधियोंकी विषद रूपसे व्याख्या करना नहीं है; दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिके लिए 'पुरुषार्थ' स्वरूपको दर्शाना, तथा उसकी सिद्धिका वेदोक्त उपाय बताना है। एवं इस पथके विशेष स्थलोंपर प्रकाश डालना है, जिससे कि तापत्रयसे संतप्त और संत्रस्त मानव अपने परम प्रशान्त ध्येयको प्राप्त कर सके। जब जहां ज्ञान, वैराग्य, समाधि, संयम, ऋतम्भरा प्रज्ञा (उमा), आदिके विषयोंकी व्याख्या करनेका अवसर आ जाएगा; उचित रूपमें व्याख्या भी होगी ही।

योगदर्शनके सब सूत्रोंका कुल योग– ५१+५५+५५+३४=१९५ सूत्र है; इतने सूत्रोंके द्वारा अनुशासित तथा अनेक भाष्यकारोंके द्वारा प्रदर्शित तत्त्वार्थको, कोई व्यक्ति १०–१२ पृष्ठोंमें समझा दे सके– यह सम्भव प्रतीत नहीं होता। यह तो क्रियात्मक–आत्मविज्ञान है जो कि किसी योग्य आचार्यका अन्तेवासी बनकर, फिर भी आचार्य और भागवत दयासे ही प्राप्त होनेवाली वस्तु है, निरा शाब्दिक अथवा वाचिक ज्ञान नहीं है। यदि इसका साक्षात्कार नहीं किया गया है, तो इस पर मौलिक रूपसे कुछ लिखा नहीं जा सकता; जिन्होंने ऐसा किया है, अथवा करते हैं, उनके हस्तगत कुछ नहीं होता।

महर्षि याज्ञवल्क्यके शब्दोंमें= 'वे कृपण (दयनीय) हैं, हे गार्गी! जो इस आत्म–सम्बन्धी विज्ञानको जाने बिना परलोक सिधार जाते हैं' यह धर्म तथा योग, जब तक हमारे जीवनका अङ्ग अथवा जीवनदाता प्रकाश नहीं बनता, विजातीय द्रव्यके समान मानव पर एक बोझ बना रहता है; अनेकों साधक और सिद्धोंके दर्शन तथा सत्संग करके भी, हमारा जीवन सरस नहीं बन पाता, ऐसा क्यों होता है? स्पष्ट ही इसका कारण यही है कि तमः पुंज वासनाओंकी समाधि (मजार) हमारे अन्तर्तम–हृदयमें बनी हुई है; जिसमें प्रकाश स्वरूप आत्मा और परमात्मा दोनों दब गए हैं, जो कि प्रकाश और रसके निर्झर हैं।

यही कारण है कि वैराग्य–विहीन योग, फलित नहीं होता– प्रकाश और नवजीवन नहीं दे पाता। विज्ञानकी दृष्टिसे भी, स्थूल देह तथा स्थूल देहगत मस्तिष्क एवं मस्तिष्कगत तत्त्व; सुषुम्ना तथा इसकी रहस्यमयी रचनाका कार्य; प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त; इन पर अभी तक किसीने अपने साक्षात्कारके आधार पर यथार्थरूपसे प्रकाश डाल कर स्पष्ट किया हो, मेरी अपनी दृष्टिमें तो ऐसा नहीं आया है अभी तक। यह एक–एक ऐसा तत्त्व है– जिस पर ऐसा प्रकाश डाला जाए जिससे मुमुक्षु उपासकको सन्तोषजनक पथका क्रियात्मक ज्ञान हो, इसकी आवश्यकता है अत्यावश्यकता है। नन्दनवनके समान परमानन्दप्रद योग, आज जन साधारणके लिए ही नहीं वरन् शास्त्रज्ञोंके लिए भी कण्टकाकीर्ण कानन बना हुआ है।

यह नितान्त सत्य है कि ऊपर कथित मस्तिष्क आदिगत ज्ञान–विज्ञान–साधक तत्त्वोंका साक्षात्कार किए बिना, यथार्थ दर्शन किए बिना योग–सिद्धिकी प्राप्ति, ग्रन्थ पढकर ही नहीं हो सकती; जिस पदार्थको देखा ही न हो उसका वर्णन कैसे सम्भव बन सकता है; यदि उस अदृश्य तत्त्वका वर्णन, बिना देखे जो कोई करेगा क्या वह यथार्थ होगा? यही कारण है कि योग पर हुए किसी भाष्यमें भी मस्तिष्कगत सूक्ष्म शरीरका, सुषुम्नागत ज्ञान–क्रिया वाहक–सचेतनसे बने सूत्रोंका, इन्द्रिय–मन–बुद्धि आदिका यथार्थ निरूपण नहीं मिलता; क्योंकि उन्होंने इन सबका साक्षात्कार सम्भावतः इस रूपमें नहीं किया जिसे कि वे प्रत्यक्ष रूपमें किसीके समक्ष रख सकते।

योगमें– चक्र, सुषुम्ना, कुण्डलिनी, ऋतम्भराप्रज्ञा (उमा), एवं अनेक रहस्यमय विवादास्पद स्थल हैं, जिन पर प्रकाश पडे बिना, योगपथमें प्रवेश कर सकना असम्भव है। इसके आगे रही लिखनेकी बात; योगके विषयमें नित्य ही नूतन लेख निकलते रहते हैं– पुस्तकोंके उद्धरणोंमें कल्पनाका मसाला लगा–लगा कर, जो पढनेमें वस्तुतः बडे रोचक, वागाडम्बरके सुन्दर वस्त्रोंसे समलंकृत, किन्तु अन्दरसे थोथे-निःसार होते हैं। उनसे स्वल्पकालिक बौद्दिक सन्तोष भले ही हो जाए, वस्तु तत्त्व कुछ नहीं मिलता; वस्तु तत्त्व तो तभी हस्तगत हो सकता है जब, या तो साक्षात्कार करा दिया जा सके, अथवा साक्षात् कृत वस्तु तत्त्वको चित्रित करके समक्ष रख दिया जाए। वर्तमान समयमें ये दोनों ही बातें दुर्लभ सी हो गई हैं। परन्तु इस विश्वमें किसी पदार्थका सर्वनाश नहीं होता, स्वल्प वा दीर्घकालिक अदृश्यता ही होती है जो समय पाकर नष्ट हो जाती है: अतः इस विषयमें हतोत्साह न होकर बलवती आशा तथा श्रद्धाका आँचल पकडे रहनेमें ही कल्याण निहित रहता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्यात्म और आरोग्य

(लेखक— श्री डॉ. गुप्ता, A. C. & D. C.; अन्वेषण समिति)

प्राचीन अर्थशास्त्र हो या वास्तुशास्त्र; धर्मशास्त्र हो या कामशास्त्र, न्यायदर्शन हो या योगदर्शन; ज्योतिष हो या भूगर्भशास्त्र; गीता होवे या पुराण सभीकी रचनाका एकमेव आधार अध्यात्मदृष्टि है। क्योंकि उक्त सभी शास्त्रोंका संबंध मानवी जीवनसे है और मानवी जीवनका अंतिम लक्ष्य पुनर्जन्मकी समाप्ति अथवा तो मोक्षकी प्राप्ति है। जिसकी ओर आधुनिक युगके किसी भी शास्त्र या तत्त्ववेत्ताका अबतक ध्यान ही नहीं पहुंचा है अथवा तो जिसकी किसीको कल्पना भी नहीं हो पाई है। कारण पुनर्जन्म या मोक्षका संबंध जिस 'आत्मा' से है, उससे संबंध रखनेवाला ज्ञान ही 'आध्यात्मिक' है। क्योंकि आत्माकी दृष्टि या तो सूक्ष्म सूक्ष्म ही तो आध्यात्मिकता है। जिसका केवल मात्र संबंध हमारी इस प्राचीनतम कहलानेवाली 'आर्य संस्कृति' से है।

आर्य संस्कृतिके मूलाधार तो 'वेद' हैं। उसी कारण इसे 'वैदिक संस्कृति' भी कहते हैं और वेद तो ईश्वर या परमात्माकी वाणी हैं— वे अपौरुषेय हैं। क्योंकि उनकी रचनाके पीछे किसी पुरुषकी कृति नहीं है। तथापि पुरुषकी वह आत्मा उस परम पिता परमात्माकी प्रेरणाका स्रोत नहीं, ऐसा भी नहीं है– वह तो उसकी प्रेरणाओंका स्रोत, उसके अपने आदि कालसे, ही बनी हुई है। क्योंकि आत्मा उस परमात्मतत्त्वका एक अंश मात्र ही तो है। परमात्मा जिस प्रकार सनातन सत्य और अविकारी है, वैसे ही यह आत्मा भी है। और वेद उसी सनातन सत्य ईश्वरकी वाणी होनेसे उनके ज्ञानकी या उनमेंके ज्ञानके प्रकाशकी प्राप्ति इस आत्माके लिये सहज सुलभ भी है। किंतु वह तो केवल मात्र उसकी अविकारी अवस्थामें ही हो सकती है। अन्यथा नहीं। इसीका प्रतिपादन स्मृतिकार मनु महाराजने निम्न शब्दोंमें अत्यंत ही स्पष्टतापूर्वक किया है—

आविर्भूतप्रकाशानां अनुपप्लुतचेतसां।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्नातिरिच्यते॥

वेद सनातन सत्य परमेश्वरकी वाणी होनेसे वे सत्य विद्या और ज्ञानके भंडार हैं। इतना ही नहीं, बल्कि वे स्वयं सत्य ज्ञानरूपी प्रकाशके दाता भी हैं। क्योंकि सत्यके प्रकाशको देनेवाला तो एकमात्र परमात्मा ही है। जब कि उसीकी छायारूप आद्यशक्ति–मायाका कार्य तो उससे सर्वथा उलटा है। उसीने इस आत्मा और परमात्माके बीच अहंकारकी दिवार खडी कर दी है। इतना ही नहीं, बल्की वह तो इस आत्मतत्त्वके साथ अहंतत्त्वके रूपमें सदा सर्वदा बनी रहती है– उसीने इसे वैकारिक बना दिया है और वह इसे छोडना कभी पसंत भी नहीं करती।

इस प्रकार आत्मा और परमात्माके बीच जबतक वह माया, अहंकाररूपसे, खडी हुई है, तबतक आत्मा अपने उस मूल स्रोतमें मिल भी नहीं सकती। उसको अपने रहनेका कोई न कोई स्थान बना ही रखना होता है। इस प्रकार मायाके आवरणसे युक्त आत्माके रहनेके स्थान भी कोई एक या दो नहीं, वे तो ८४ लाखके जितने हैं। जिनमें, मायाके आवरणसे मुक्ति पानेतक, कहीं न कहीं इस आत्माको अपना वास करना ही होता है। उन ८४ लाख स्थानोंमेंसे भी केवलमात्र एक स्थान ही ऐसा है, जिसमें वास करते हुये आत्मा अपने आपको उस मायासे अहंतत्त्वसे मुक्त बना सकती है। अन्यथा नहीं। क्योंकि इस मनुष्यकी योनिको प्राप्त करनेपर उसे बुद्धितत्त्वके प्रमाणकी अधिक प्राप्ति होती है। जिसका सदुपयोग करते हुये वह अपने आपको उस मायाके बंधनसे अवश्य मुक्त कर सकता है। कारण बुद्धितत्त्वका विकास ही तो उसे सत्यासत्यकी परीक्षा करने लगाता है। इस प्रकार बुद्धितत्त्वकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठता या विकास अथवा तो सदुपयोग आदिका विचार करते हुये ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वायंभू मनु महाराजको निम्न स्पष्टता करना भाग हुवा है–

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमस्तु नरः श्रेष्ठाः नृपुच ब्राह्मणास्मृतः॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसः विद्वांसु कृतबुद्धिनः।
कृतबुद्धिसु कर्त्तारः कर्तृसु ब्रह्मवेदिनः॥

उपरोक्त वचनोंमें मनु महाराजने संक्षेपमें यही बतलाया है कि अन्यान्य बुद्धिजीवि प्राणियोंमें मनुष्यको ही तीव्र बुद्धि प्राप्त हुई है। जिसका सदुपयोग करके–उत्तरोत्तर उन्नत बनाके, वह अपने मायाके आवरणसे मुक्त हो सकता है। अर्थात् अपने आत्मतत्त्वको परमात्मतत्त्वमें पुनः विलीन कर सकता है। इसीलिये ब्रह्मवेत्ताकी बुद्धिको सर्वोपरि स्थान दिया है।

किंतु दुर्दैववशात् आज वही मनुष्य उस मायावाद या भौतिकवादका सर्वाधिक शिकार बना है और अपनी उस तीव्र बुद्धिका दुरुपयोग कर रहा है। जिसका प्रत्यक्ष प्रगट प्रमाण ही आधुनिक विज्ञानकी शोध हैं। जिन्होंने ही उसे अधिकाधिक अहंभावि बनने लगाया है। क्योंकि वह उस विज्ञानकी शोधोंसे प्रभावित हो मायावादमें इतना लिपायमान हो गया है कि अपनी आत्माके मूलस्वरूप– उस परमात्माको ही भूला बैठा है। प्रतिफल स्वरूप उस मूल स्वरूपके नजदीक पहुंचनेके बजाय, वह तो उससे उलटा, अत्यंत दूर निकल गया है। जहां उसके सत्यप्रकाश स्वयंकी पहुंच ही नहीं हो पा रही है।

इस प्रकार भौतिकवादके घोरतम अंधकारमें फंसी उसकी आत्मा अब तो यह भी नहीं जानती कि वह किसका अंश है, कहांसे आयी है और कौनसा उसका अंतिम लक्ष्य है? इतना ही नहीं, वरंच उसने तो अब अपने स्वयंके उद्गमके स्रोत– उस परमात्मतत्त्वके प्रति द्वंद्व युद्ध भी छेड दिया है– वह कहती है अब तो मैं भी कृत्रिम सृष्टि निर्माण कर रही हूं– मैंने भी कृत्रिम गृह, उपगृह आदि पैदा करना आरंभ कर दिया है। भविष्यमें तो मैं उस प्रतिसृष्टिको भी पैदा कर डालूंगी, जो उसके सृष्टा स्वयंके अस्तित्वको– उसके सर्जनहारको पूर्णतया भूला देनेवाली सिद्ध होगी। ×

सारांश आधुनिक विज्ञानकी प्रगतिके कारण मनुष्य परमात्माको भूलता जा रहा है– उस परमात्माको जिसका मूल स्वरूप ही सत्–चित् और आनंदमय है। किंतु फिर भी उसकी आत्मा उसे उसकी याद बराबर दिलाया करती है– जिसके कारण ही वह आनंद सुख चाहता है। नहीं, नहीं, वह तो उसे निरंतर प्राप्त करनेके प्रयत्नोंमें ही अहर्निश लगा हुवा है। इस प्रकार सदा सर्वदा आनंद–सुखका रटन करते हुवे भी यदि वह रोगरूपी दुःखोंसे ग्रसित होते जा रहा है, तो उसका कारण भी वही भौतिकवादजनित अहंकार है। वह मानता है कि रोगोंसे मुक्ति दिलानेवाले चिकित्साविज्ञानमें भी मैंने वह अनूठी प्रगति की है, जिसके आधारपर मैं मनुष्यको केवल रोगमुक्त ही नहीं, अपितु अजर–अमर भी बना सकता हूं।

इस प्रकार चिकित्सा विज्ञान–रोगरूपी दुःखोंसे छूटनेके उपायोंमें आधुनिक विज्ञान जैसे–जैसे अपना कदम आगे बढाते जा रहा है, वैसे–वैसे रोग और रोगियोंकी संख्या भी अधिकाधिक बढती जा रही है। इस बातसे तो आज कोई भी इनकार कर ही नहीं सकता है। इसीलिये हमारा तो यही कहना है कि---

'मनुष्य यदि रोगरूपी दुःखोंसे घबराता है और उससे दूर रहने या उसे दूर रखनेके प्रयत्न करता है, तो उसका एकमेव कारण उसका 'आत्मतत्त्व' ही है। जो परमात्माका एक अंश होनेसे सदा सर्वदा अपने गुण आरोग्य–सुखको प्राप्त करनेके प्रयत्न किया करता है। आधुनिक वैज्ञानिकोंकी बुद्धि भी यही चाहती है। नहीं, नहीं उसने तो उन्हें उस दिशामें तनतोड प्रयत्न करने भी लगा रखा है। तथापि सुख या आरोग्यके बदले यदि रोगरूपी दुःखोंसे ही उनका पाला पड रहा है, अथवा तो दिनोंदिन उनकी भीषणताके साथ–साथ संख्या भी बढ रही है, तो उसका कारण भी वही है कि– वे अपने उसी अध्यात्मके प्रकाशको भूला बैठे हैं। जो कि उन्हें उन रोगोंके वास्तविक कारणोंकी ओर लिया ले जानेवाला है।'

इसलिये आजकी जो अनिवार्य तथा प्राथमिक आवश्यकता अथवा तो युगकी पुकार है, तो वह इन बढते हुये भीषण रूप

× श्रीमद् भगवद् गीताके १६ वें अध्यायमें आसुरी सम्पत्तिके जिन जिन गुणोंका वर्णन योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने किया है उनमेंकी कौनसी बात आधुनिक वैज्ञानिकोंके लिये नहीं लागु पडती? यही एक प्रश्न है। आशा है कि पाठकगण उनका गंभीर विचार करते हुये तुलनात्मक दृष्टि अपनावेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धारण करते हुवे रोगोंसे मुक्ति पानेकी है। जो कार्य उसी तीव्र बुद्धिका सदुपयोग करते हुवे, परमात्मतत्त्वके नजदीक पहुंचनेके प्रयत्नोंसे ही साध्य हो सकता है। अन्यथा नहीं। क्योंकि उसी सत्यके प्रकाशमें हमारी बुद्धि रोगरूपी दुःखोंके वास्तविक कारणोंको शोध, उनसे मुक्ति मिला सकती है। जब तक इन रोग रूपी दुःख स्वयंसे मनुष्य मुक्त नहीं होता, तबतक जन्म और मरण जैसे महान्तम दुःखोंसे भी कैसे मुक्ति पा सकता है? अर्थात् उनसे मुक्ति पाना तो सर्वथा असंभव है।

जिसका कारण भी अत्यंत ही स्पष्ट है कि अमेरिका जैसा राष्ट्र जहां बुद्धिवाद, भौतिकवाद या विज्ञानवाद ही सर्वाग्य है। केवलमात्र यदि वहां नहीं है, तो वह अध्यात्मवाद ही है। साथ ही उस राष्ट्रने आरोग्य–सुखकी प्राप्तिमें भी कोई कसर बाकी नहीं रहने दी है। क्योंकि केवलमात्र दन्तस्वास्थ्यकी रक्षाके लिये ही उसे अपने स्वास्थ्य बजेटका ८० प्रतिशत भाग खर्च करना होता है। तथापि उसका परिणाम तो शून्यके जितना ही है। क्योंकि वहांकी ९५ प्रतिशत प्रजा एकमात्र दंतरोगसे ग्रसित है। बाकी जो ५ प्रतिशत सफलता बतलाई जाती है, वह भी जनगणनाकी दृष्टिसे तो नाम मात्रकी ही दर्शक है। कारण जनगणनामें तो नवजात शिशुसे लगा उन सब ही बालकोंका समावेश है, जिनकी दन्तावलियां निकली ही नहीं हैं। इसलिये बाकीके ५ प्रतिशतमें भी यदि उन दन्तविहीन बालकोंका समावेश है, तो, तो फिर उस सफलताका भी कोई अर्थ नहीं रहता है।

दन्तस्वास्थ्य रक्षामें इस प्रकार पूर्णरूपेण निष्फल होनेके कारण ही कैन्सर और हृदयविकार (हार्टफैल) आदिसे मरनेवालोंकी वार्षिक संख्या भी लाखोंकी है– वहां गत वर्ष सन् १९६४ में ३,००,००० तीन लाखके जितने लोग तो केवलमात्र कैन्सरसे ही मृत्युमुखमें समा गये हैं। जो संख्या सन् १९५४ में तो २,५०,००० ढाई–लाखके जितनी थी। इस प्रकार अकेले कैन्सरसे मरनेवालोंकी संख्यामें ही प्रति वर्ष ५००० पांच हजारके जितने लोगोंका अधिकाधिक समावेश होता हुआ चला जा रहा है। इतना ही नहीं, बल्कि इस प्रकारकी वस्तुस्थितिने ही, आधुनिक दन्तविज्ञानको जन्म देनेवाले अमेरिकाको दन्तस्वास्थ्यको शारीरिक आरोग्यका निदर्शक भी ठहराने लगा दिया है। जिसका अर्थ है कि जिनका दन्तस्वास्थ्य बिगडा कि वे ही लोग शारीरिक अन्यान्य रोग–कैन्सर और हृदयविकार आदिके शिकार बनते हैं।

आधुनिकों द्वारा स्थापित इस सत्य established fact को दृष्टिपथमें रखते हुये, गुजरात राज्यके भूतपूर्व मुख्य मंत्री और डॉक्टर श्री जीवराज महेताको अखिल भारतवर्षीय दन्त तबीबोंके १७ वें अधिवेशनका उद्घाटन करते समय, सन् १९६१ में, यह कहना भाग हुवा कि—

'दन्त रक्षा–कार्यमें यदि ५० प्रतिशत सफलता भी आयुर्वेदमेंसे मिलाई जा सके तो वह देश तथा मानव समाजके लिये एक उल्लेखनीय सेवा होगी। अन्यथा इस समस्याका कोई हल जल्दीसे नहीं निकाला गया, तो उससे देश की बडी हानिके भयकी सूचना भी उन्हें देना भाग हुवा।'

इस प्रकार डॉ. महेता द्वारा दी गई भयकी सूचनाको भारतके डेन्टिस्ट, डॉक्टर या वैद्य कोई मानें या न भी मानें, किंतु प्राचीन शास्त्रोक्त आहारविज्ञान तो उक्त स्थापित सत्यको प्रमाणित सत्य– proved fact ही ठहराता है। क्योंकि अमेरिकामें व्यापक दन्तरोगोंका कारण जो विरुद्धाहार है, वही आधुनिक किन, किन रोगोंका उत्पादक नहीं? अर्थात् वह तो कृमिदन्तसे लगा आधुनिक सभी रोगोंका उत्पादक है+ केवल मात्र कृमिदन्तादिकी उत्पत्ति उसका प्रारंभिक परिणाम, तो कैन्सर आदिकी उत्पत्ति उसीके अत्यंत ही वृद्धिगत कार्यका दुष्परिणाम है। किंतु आधुनिक विज्ञानके आन्वेषकोंको इसकी जानकारी न होनेका कारण भी वही अध्यात्मदृष्टि हैं। जिसका संबंध आरोग्य और आहार दोनों से घनिष्टतम है।

इसलिये आरोग्य रक्षक या निर्माता आहार जैसे विषयमें भी प्राचीन शास्त्रगत आध्यात्मिकता किस प्रकार समाई हुई है? उसकी विस्तृत विवेचना किये बिना अब तो आरोग्यकी रक्षा करना भी संभवनीय नहीं है। किंतु आहारसे संबंधित विषयको स्पर्श करनेसे पूर्व उसके मूलाधार आयुर्वेद और उसके पंच महाभूत सिद्धांतकी आध्यात्मिकता पर प्रकाश डालनेकी भी अनिवार्य आवश्यकता है। क्योंकि वेदोंमें अथर्ववेदका एक उपांग आयुर्वेद ही ऐसा है, जिसका संबंध–आरोग्यसे है। इतना ही नहीं, बल्कि उसका संबंध तो संपूर्ण मानवी जीवनके ज्ञानसे भी है। अर्थात् मानवीकी संपूर्ण आयु सुखपूर्वक बितानेके बाद, वह उसके अंतिम

+ सुश्रुत उत्तर तंत्र अ. ५४, सुश्रुत अ. २० और चरक सूत्र अ. २६ के आधार पर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्ष्य मोक्षकी प्राप्ति करवानेमें भी सरलता निर्माण करने-वाला शास्त्र है।

सारांश मोक्षकी प्राप्तिके लिये न सही, किंतु यदि आज बढते हुये भीषण रोगोंका शिकार बननेसे स्वयंको बचाना है और वास्तविक आरोग्य-सुखपूर्वक जीवन यापन करना है, तो भी प्राचीन शास्त्रोक्त आहारविज्ञानकी आध्यात्मिकता या तो उसकी आध्यात्मिक दृष्टिकी सूक्ष्मातिसूक्ष्मताको समझना ही होगा अन्यथा जन्म और मरणकी भीषण यातनाओंसे छुटकारा पाना तो एक ओर रहा, रोगरूपी दुःखोंसे भी कदापि छुटकारा हो ही नहीं सकता है। इस प्रकार अध्यात्म और आरोग्य एक ही बीजसे अंकुरित दो पात हैं। इसलिये उनका संबंध भी अविच्छिन्न है।

'विश्वस्वास्थ्य संघ' ध्यान दे

आज बढते हुये भीषण रोग-कैन्सर और हृदयविकार (हार्टफैल) आदिको यदि वस्तुतः अटकाना है, तो स्वस्थ शरीररचनाके मानदंडकी यथार्थताको खोज निकालना होगा -आधुनिक फिजिऑलाजी द्वारा प्रतिपादित सर्व सामान्यावस्था-नॉर्मल कंडीशनसे अब काम नहीं चल सकेगा। क्योंकि वह तो प्राचीन शास्त्रानुसार अनेक दृष्टि, जिसमें स्वास्थ्या-स्वास्थ्यप्रद कीटाणुओंका भी समावेश है, से वैकारिक है।

सोवियत पत्र 'तास' ने, अजरबैजानका एक व्यक्ति जो अपनी १६० वीं जन्म गाठ मनायेगा और जो अपने जीवन भरमें कभी बिमार नहीं पडा, ऐसा दि. २२-५-६५ के समाचारमें सूचित किया है। जिस परसे यह अनिवार्य आवश्यक मालुम होता है कि उसकी विधिवत शारीरिक तपास करवाई जाय। जिससे प्राचीन शास्त्र-आयुर्वेद द्वारा प्रतिपादित प्राकृत 'शारीर-क्रिया-विज्ञान' की सत्यताको प्रत्यक्षमें प्रमाणित करनेका मार्ग प्रशस्त बन सके। क्योंकि भारतवर्षमें नहीं, केवलमात्र मध्यप्रदेशमें ही ९३३४ व्यक्तियां एक सौ वर्षसे अधिक आयुकी विगत जनगणना समय प्राप्त हुई हैं। उनमें भी ५४०२ तो महिलाएँ हैं और बाकीके ३९३२ पुरुष।

टी. बी. (तपेदिक) की

अचूक चिकित्सा घर बैठे करें। ५८ वर्षकी खोज अनुभव एवं परीक्षणका परिणाम, 'यज्ञचिकित्सा' मूल्य ५.०० सेनेटोरियमका परिणाम ८०%। लेखक— सरकार द्वारा अनेकबार पुरस्कृत एवं सम्मानित स्व. डा. फुन्दनलालजी अग्निहोत्री एम. डी (लंडन) मेडिकल आफिसर टी. बी. सेनेटोरियम।

लेखककी कुछ अन्य पुस्तकें

(२) आयुर्वेदिक प्राकृतिक चिकित्सा-आमुख लेखक— स्व. श्री मावलंकरजी, अध्यक्ष लोकसभा। हर रोगकी सरल अचूक चिकित्सा घर पर ही स्वयं करें। मू. ४.००

(३) आरोग्यशास्त्र— सर्वदा स्वस्थ रहनेके वैज्ञानिक अनुभूत नियम बतानेवाली अपने विषयकी एकमात्र पुस्तक। उपहारमें देनेके लिए अनुपम भेंट। मू. २.००

(उक्त पुस्तकें शिक्षा विभाग एवं पंचायतराज द्वारा स्वीकृत और सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं।)

(४) राष्ट्र उत्थानकी कुंजी— गऊ प्रदत्त पदार्थों द्वारा अनेक रोगोंकी चिकित्सा एवं गऊकी उपयोगिता बतानेवाली अनूठी पुस्तक। मू. ००.५० डाक व्यय सबका पृथक्

स्वास्थ्य भंडार, १६ केला बाग, बरेली,

ब्रांच, स्वास्थ्य भंडार, 7 A/३ लाजपतनगर. लखनऊ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदमें शरीर-विज्ञान

(लेखक— श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा, एम्. ए., साहित्यालङ्कार, सिद्धान्तवाचस्पति, कानपुर)

वेदोंमें[१] अनेकों शारीरिक विज्ञानोंकी चर्चा है। अथर्ववेद १ में तो अनेक चिकित्सा पद्धतियोंका दिग्दर्शन है।

इसी प्रकार यजुर्वेदके एक मंत्रमें अद्भुत शरीर-विज्ञानकी ओर निर्देश है जिसको न समझ कर पौराणिक भाष्यकारोंने अश्लील व बीभत्स अर्थ किया है। कुछ लोगोंने महर्षि दयानन्दजीके भाष्य पर आक्षेप भी किया है। वह मंत्र यह है—

'पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनं शेपेन प्रजाᳫं रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः।'
[यजुर्वेद अध्याय २५ मंत्र ७]

महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीका भाष्य— '(पूषणम्) पुष्टिकरम् (वनिष्ठुना) याचनेन (अन्धाहीन्) अन्धान् सर्पान् (स्थूलगुदया) स्थूलयागुदया सह (सर्पान्) (गुदाभिः) (विह्रुतः) विशेषेण कुटिलान् (आन्त्रैः) उदरस्थैर्नाडीविशेषैः (अपः) जलानि (वस्तिना) नाभेरधोभागेन (वृषणम्) वीर्याधारम् (आण्डाभ्याम्) अण्डाकाराभ्यां वृषणावयवाभ्याम् (वाजिनम्) अश्वम् (शेपेन) लिङ्गेन (प्रजाम्) सन्ततिम् (रेतसा) वीर्येण (चाषान्) भक्षणानि (पित्तेन) (प्रदरान्) उदरावयवान् (पायुना) एतदिन्द्रियेण (कूश्मान्) शासनानि अत्र कशधातोर्मक्प्रत्ययोऽन्येषामपीति दीर्घश्च (शकपिण्डैः) शक्तेः संघातैः।

भावार्थ— येन येन यद्यत्कार्यं सिध्येत्तेन तेनाङ्गेन पदार्थेन वा तत्तत्साधनीयम्।

पदार्थ— हे मनुष्यो! तुम (वनिष्ठुना) मांगनेसे (पूषणम्) पुष्टि करनेवालेको (स्थूलगुदया) स्थूल गुदेन्द्रियके साथ वर्तमान (अन्धाहीन्) अन्धे सांपोकों (गुदाभिः) गुदेन्द्रियोंके साथ वर्तमान (विह्रुतः) विशेष कुटिल (सर्पान्) सर्पोंको (आन्त्रैः) आँतोंसे (अपः) जलोंको (वस्तिना) नाभिके नीचेके भागसे (वृषणम्) अण्डकोषको (आण्डाभ्याम्) आंडोंसे (वाजिनम्) घोडाको (शेपेन) लिङ्गसे और (प्रजाम्) सन्तानको (रेतसा) वीर्यसे (पित्तेन) पित्तसे (चाषान्) भोजनोंको (प्रदरान्) पेटके अंगोंको (पायुना) गुदेन्द्रियसे और (शकपिण्डैः) शक्तियोंसे (कूश्मान्) शिखावटोंको निरन्तर लेओ।

भावार्थ - जिस जिससे जो जो काम सिद्ध हो उस उस अङ्ग वा पदार्थसे वह वह काम सिद्ध करना चाहिए।[२]

पौराणिकोंके आक्षेप—

विद्यावारिधि पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र लिखते हैं— 'इस मंत्रमें दयानन्दने स्थूल गुदासे अन्धे सर्पोंको लेना लिखा है इत्यादि प्रकरण और बुद्धि विरुद्ध ऐसे लेख हैं जिनको देखकर हँसी आती है।'[३]

जैनी पं. अजितकुमारजी शास्त्री आक्षेप करते हैं—

"स्वामीजीकी पांचवीं गप्प भी सुनिये—'''महाशयजी!

---

१ द्रष्टव्य– स्वामी ब्रह्ममुनिजी विद्यामार्तण्ड (पं. प्रियरत्नजी आर्ष] कृत 'अथर्ववेदीय चिकित्सा पद्धति' पुस्तक [श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, रामलीला मैदान, नई दिल्लीसे प्राप्य]

२ 'यजुर्वेद-भाष्यम्' (तृतीयो भागः), द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ २२१-२२२

३ 'शुक्ल यजुर्वेद संहिता' मिश्र भाष्य, उत्तरार्ध, पृष्ठ १०४०, [संवत् १९५९ वि. में खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई द्वारा प्रकाशित].

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस फिलासफीका भी मुलाहिजा कीजिए। अण्डकोशसे घोडे मिल जाते हैं, गुदासे अन्धे सांप तथा ज्यादा टेढे साँपोंको ले लीजिये, ताकतोंसे शिखावट मिल जायेंगे। यह मन्त्र भी बहुत भारी लाभदायक है। घोडोंके लिए लोगोंको हजारों लाखों रुपए खर्च करने पडते हैं, सो जनाब! सारा खर्च बच जायगा। इस अद्भुत रसायनसे जिसको घोडेकी जरूरत हुई चट अन्डकोषसे ले लिया। किन्तु यह कुछ मालूम न हुआ कि ये अण्डकोष किस महाशयके हैं? सो हमारे दयालु आर्यसमाजी भाई बतौर परोपकारके यह भी बतला दें तथा सबसे अच्छा यह हो कि वे प्रयोग द्वारा अण्डकोषसे घोडे लेकर एकबार अवश्य बतला दें। गुदासे अन्धे सांप और ज्यादा टेढे सांप कैसे मिलेंगे और वह गुदा किसकी होगी, यह बात भी लगे हाथ बतला दी जावे तो बहुत अच्छा हो। इस गप्पके समझनेमें भी बुद्धिमानोंकी बुद्धि और डाक्टरोंकी डाक्टरी बेकाम हो जाएगी।" ४

मुरादाबाद निवासी श्री जगन्नाथदास— "१८–अध्याय २५ मं. ७ का पदार्थ सर्वथा अश्लील अकथनीय है।" ५

पुनः— "अध्याय २५ पृष्ठ ३७६ स्थूल गुदेन्द्रियके साथ अन्धे सांपोंको इत्यादि सर्वथा अश्लील और असमंजस लेख स्वामीजीकी कपोल कल्पना है जो कोई ऐसे लेखोंको वस्तुत; वेदका अर्थ जानेगा निःसन्देह वेदसे श्रद्धा रहित हो जायगा।" ६

श्री कालूराम शास्त्रीका आक्षेप— "इसके आगे यजुर्वेद अध्याय २५ मंत्र ४ में स्वामीजी अपने शिष्योंको शिक्षा देते हैं कि अन्धे सांपोंको गुदासे पकडा करे गुरु हो तो स्वामी कैसा हो और शिष्य हों ऐसे ही हों जैसे हमारे दयानन्दीभाई, मगर ऐसे धार्मिक दयानन्दी कम हैं जो इस कार्रवाईको अमलमें लाते हैं।" ७

महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीके भाष्यकी विवेचना

यजुर्वेदके इस २५ वें अध्यायके आरम्भसे ही शरीरके अङ्गोंका वर्णन किया गया है– यथा 'शादंदद्भिरवकान्दन्त……' (मनु. २५।१) दांतोंसे छेदन किया जाता है। इस प्रकार मुख, ग्रीवा आदिका वर्णन करते हुए पेटके आँतोंका वर्णन किया है।

"(अन्धाहीन्) के अर्थ 'अन्धान् सर्पान्' महर्षिजीने किया है। 'अन्धाहीन्' इसमें 'अहीन्' शब्दके अर्थ 'सर्पान्' लिए गए हैं। 'अहि' शब्दके कोषादिमें अनेकार्थ हैं यथा—

"आङिश्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च अश्रि। अहि। अहन्तीति अहिर्मेघः सर्पो वा" (निघण्टु १।१०) में 'अहि' मेघ अर्थमें (निघण्टु १।१२) में अहि उदक अर्थमें।

यहाँ 'अन्धाहीन् अन्धान् अहीन् इव अर्थात् कुटिलनाडी विशेषान्के अर्थमें जानो।

(पूषणम्) बलकारक क्रिया वा वस्तुको। (वनिष्ठुना) ग्रहण करनेकी इच्छासे धारण करो। (अन्धाहीन्) अन्ध सर्पोंकी तरह कुटिल आंतोंको। (स्थूलगुदया) स्थूल गुदासे सम्बन्ध रखनेवाली (जानो)। (सर्पान्) सर्पवत् कुटिल (आँतों) की (गुदाभिः) जो गुदाके साथ हो (अर्थात् दोनों ओरसे) (विह्रुतः) विशेष कुटिल हैं (जानो और उन) (आन्त्रैः) पेटमें ठहरनेवाली आंतोंसे यथायोग्य काम लो (आपो) अपमय अंश (मूत्र) को (वस्तिना) मूत्राशयसे धारण करो (वृषणम्) वीर्यके आधारको (आण्डाभ्याम्) वीर्य सींचनेवाले अण्डकोषोंसे धारण करो अर्थात् यह समझो कि वीर्यको अण्डकोष सेंचन तथा धारण करते हैं। (वाजिनम्) वेगको (शेपेन) लिंगसे अर्थात् वेग लिंगसे धारण होता है यह जानो (प्रजाम्) सन्तानको (रेतसा)

---

४ "आर्यसमाजकी डबल गप्पाष्टक" पृष्ठ ८-९ (सन् १९३९ ई. में मंत्री श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला प्रकाशन विभाग, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, अम्बालाछावनी द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण)

५ "दयानन्द हृदय" पृष्ठ १५ (संवत् १९८५ वि. में श्री कालूराम शास्त्री, अमरौधा [जि. कानपुर] द्वारा प्रकाशित, द्वितीयवार)

६ "दयानन्दके यजुर्वेद भाष्यकी समीक्षा" पृष्ठ ४७ (संवत् १९७१ वि. में ब्रह्मप्रेस, इटावा द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, द्वितीयवार)

७ "दयानन्दकी विद्वत्ता" पृष्ठ १४ (सन् १९२८ ई. में सनातन धर्म पुस्तकालय, इटावा द्वारा प्रकाशित, पञ्चमवार)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वीर्यसे अर्थात् वीर्यसे सन्तानका शरीर होता है यह जानो (चाषान्) भोजनोंको (पित्तेन) पित्त अर्थात् पाचकशक्ति वा जठराग्निसे पचाओ (प्रदरान्) पेटके अंगों अर्थात् आमाशय, प्लीहा, यकृत और आंतोंको (पायुना) गुदाके यथार्थ रीतिसे काम करनेसे धारण करो (कूश्मान्) गति और शासन अर्थात् सूचना वा ज्ञानको (शकपिण्डैः) मज्जातन्तुके समूह वा शक्ति संघातसे धारण करो।

इस मंत्रमें निम्नाङ्कित बातोंका उल्लेख है—

(क) बलका एक मुख्य नियम।

(ख) छोटी और बडी आँतोंका वर्णन।

बडी आँतें स्थूल गुदासे सम्बन्धित हैं और छोटी आँतें साँपकी तरह पेचदार विशेष कुटिल हैं।

(ग) वस्ति और मूत्र।

(घ) शिश्नप्रदेश (गुह्येन्द्रिय)।

(ङ) पाचनशक्ति।

(च) शकपिण्ड ही गति और शासनका स्रोत हो।'

डाक्टरी पुस्तकोंसे पुष्टि

Intestine = पेटकी आंतोंका वर्णन—

The small intestine (छोटीं आंतोंकी व्याख्या)-

'The small intestine is about twenty five feet long. It begins at the right hand end of the stomach, just under the liver, and ends down near the right groin It is divided into three parts-the duodenum, the jejunum and the ileum.' 8

अर्थात्– 'छोटी आँत लगभग २५ फीट लम्बी है। यह पाकस्थलीके दक्षिण हस्तके सिरेसे प्रारम्भ होती है, ठीक यकृतके नीचेसे और दाहिने पेट और जांघके बीचके भागके अन्तमें नीचेकी ओर जाकर समाप्त होती है। यह तीन हिस्सोंमें विभाजित है– ड्यूनम, जेजुनम, इलीयम।'

1. DUODENUM— The duodenum is the first Part, that which is joined to the stomach, is about eight or ten inches long.

2. JEJUNUM— "The jejunum (from a word which means empty because it is generaly found empty after death) Comes next and is about eight feet long."

3. ILEUM— "The ileum (from a word which signifies to twist and so called from its numerous Coils) includes the remaining ten or twelve feet of the small intestine." 9

अर्थात्– 'ड्यूडिनम- पहला हिस्सा है जो कि पाकस्थलीसे सम्बन्धित है और लगभग आठ या दश इंच लम्बी है।

जेजुनम– (यह शब्द रिक्त अर्थमें है जो कि मृत्युके पश्चात् इसको रिक्त ही पाया गया) यह द्वितीय है और लगभग आठ फीट लम्बी है।

इलियम (यह उस शब्दसे निकला है जो मरोडनेके अर्थमें है, और इसलिए यह उसका नाम पडा कि इसके बहुतसे लच्छे या कुंडलियाँ होती हैं)। यह उस छोटी आंत से सम्बन्ध रखती है जो कि दश या बारह फीट लम्बी है।'

The large intestine (बडी आंत)—

"The large intestine extends from the end of the small intestine near the right groin, to the bowels or the anus. It is about five feet in length, and has the folliowing courses."

अर्थात्– यह बडी आंत छोटी आंतके सिरेसे फैलती है– आरंभ होती है और दाहिने पेट और जांघके बीचका भाग-तक पहुँचती है। यह आंत, आंतडियों या गुदासे संबंध रखती है। यह लगभग पांच फीटके लम्बी और निम्न प्रकारसे इसकी गति है—

"First it mounts upward from the place of begining to the underside of the liver, passes directly across to the left side abdominal cavity where it takes a sudden turn, known as the sigmoid flexer, and there becomes the rectum, or straight intestine, which is the last portion, and ends in the anus."

---

८ 'Human body' (ह्यूमन बॉडी) PP 52 तुलना करो, पं. शिवशर्मा, महोपदेशक कृत 'सत्यार्थ निर्णय' (प्रथम खण्ड) प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३१३.

९ वही.

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात्– ' सबसे प्रथम यकृतके भीतरी भागके आरम्भसे यह ऊपरको चढती है और पेटके छिद्रके बायीं ओरको पार करती हुई जाती है जहाँपर वह एकदम लौट पडती है जिसको ' सिगमोइडकज ' कहते हैं, वहाँपर यह रेक्टम अथवा सीधी आंत बन जाती है, जो कि अन्तिम हिस्सा है और गुदातक जाकर समाप्त हो जाता है । '

" Mounting upwards in the right side of the abdomen, passing across the upperpart and then turning on the left side the large intestine folds itself around them. The large intestine is divided into three parts– the caecum, the colon, and the rectum. derived from the word which means blind, is the first part of the large intestine, and extends downwards from the point where the small intestine enters the large pouch, generaly about two and half inches long and wide. "

अर्थात्– ' पेटके दाहिनी ओरसे ऊपरको चढती हुई ऊपरके भागको जाती हुई, और वाम ओरको लौटती हुई, बडी आँत इनके चारों ओर लिपट जाती है । यह बडी आंत तीन भागोंमें विभक्त है– सीकम, कोलन और रैक्टम। यह रैक्टम शब्द उस शब्दसे निकला है जो अन्धेके × अर्थमें है । यह बडी आंतका पहला हिस्सा है और नीचेकी ओरको फैला हुआ है । उस स्थानतक जहाँपर छोटी आंत बडी थैलीतक जाकर पहुँचती है । यह विशेषतया लगभग अढाई इंच लम्बी और चौडी है । '

" The colon is all that part of the large intestine which ascends from the caecum to the abdominal cavity, runs cross the left of the abdomen, and descends on the left side to the pelvis, where it terminates in the rectum. These three devisions of the colon are known as ascending colon, the transverse colon and the descending colon. The rectum, the last six or eight inches of the intestine, is so called from a word which means straight because it is less flexous than any other part of the intestinal conal. It begins at the upper part of tne OS sacreem, where the bolen ends and going down obliquely, it is tied to the extremeties of the cocoyx by arcolar tissue behind, and is connected with the neck of the bladder in men. but in women with the vagina before; whence arises the sympathy between those parts, " 10

' उपर्युक्त अंग्रेजी लेखका वही तात्पर्य है जो वेदमें बताया है । ' रैक्टम ' यह आंत है जो अन्धे साँपके समान है यह सारे नाम वेदोंसे ही लेकर रखे गए हैं । '

डा० रॉबर्ट हौडन, एम्. ए., डी. एस. सी.; एम्. बी. सी. एम्., डरबन यूनिवर्सिटीमें एनाटोमीके प्राचार्य लिखते हैं—

" The caecum, commencement of the large intestine, is the large blindpouch situated between the colic valve. Its blind-end is directed downward and its open end upwards communicating directly with the colon, of which this blindpouch appears to be the beginning or head and hence the old name of caput caccuumeoli was applied to it. " 11

वेदमंत्रमें ' स्थूलगुदया ' यह एकवचन है और ' गुदाभिः ' यह बहुवचन है । ' स्थूलगुदा ' उस आंतको कहते हैं जिसका सिरा मलको बाहर निकालता है । इस अन्तिम सिरेको ही कांच कहते हैं । डाक्टरीमें इसका नाम ' Blind pouch ' अंधी आंत रक्खा हुआ है । वेदने इसको अन्धाहीन् कहा । इस आंतसे कई छोटी छोटी आंतें सम्बन्धित हैं इसलिए ' अन्धाहीन् ' बहुवचन कहा है । ' गुदाभिः ' यह बहुवचन है । कुटिल सर्प और केवल सर्पका इससे सम्बन्ध है । डाक्टरी, कुटिल सर्पको, Coilae=लच्छा बांधे हुए साँप कहती है । वेद विन्हुत आन्त्रैः कहता है । डाक्टरी Straight

× वेदने इसी आंतको ' अंधासाप ' कहा है— (लेखक)

१० " Human body " PP. 52–54.

११ " Anatomy " (' एनाटोमी ' पुस्तक) PP. 1098 तुलना करो ' सत्यार्थ–निर्णय ' प्रथम खण्ड, पृष्ठ ३१७–३१८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

intestine सीधी आंत कहती है। वेद 'सर्पान्' ऐसा कहता है।'

अब विज्ञ पाठक भलीभाँति समझ सकते हैं कि वेदमें शारीरिक विद्या-सम्बन्धी आँतोंकी चर्चा है न कि गुदासे अन्धे साँपोंको पकडनेका वर्णन है।

जिन वेदमंत्रोंसे अनादि शारीरिक विद्या सिद्ध होती है उनमें पोंगापंथी पौराणिकों व जैनियोंको अश्लीलता दीख पडती है!!

आक्षेपोंके निराकरण

पं. ज्वालाप्रसाद मिश्रने केवल 'प्रकरण और बुद्धि विरुद्ध'... लिखा है। यह नहीं लिखा कि क्या बुद्धि विरुद्ध है। मिश्रजीने जो टीका की है वह नितान्त अश्लील व प्रकरण विरुद्ध है।

श्री अजितकुमार शास्त्रीके आक्षेपोंका उत्तर स्वामी कर्मानन्दजी (दण्डी) ने 'जैन भ्रमोच्छेदन अर्थात् आर्यसमाजियोंकी गप्पाष्टकका उत्तर' नामक पुस्तिकामें दिया है १२; श्री जगन्नाथदासने केवल अश्लील और असमंजस लेख लिखा है जिसको वे स्वयं न समझ पाए; श्री कालूराम शास्त्रीके आक्षेपोंके उत्तर पं. व्रजमोहन झा ने 'कालूराम मुख-मर्दन' १३ तथा पं. जितेन्द्रशर्माने 'कालूरामकी कालिमा' १४ नामक पुस्तिकाओंमें दिया है।

पं. कालूराम शास्त्रीकी पुस्तिकामें "यजुर्वेद अध्याय २५ मंत्र ४......" मुद्रित है जो नितान्त अशुद्ध है। मंत्र ४ नहीं वरन् ७ है। सोलह पृष्ठकी पुस्तिकामें यह भयंकर अशुद्धि है और आक्षेप भी ऊटपटांग है।

पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र, पं. कालूराम शास्त्री प्रभृति पौराणिक श्री महीधराचार्यके भाष्यको परम प्रामाणिक मानते हैं। उनका भी भाष्य देखिये—

"वनति सम्भजति वनिष्ठुः स्थूलान्त्रं तेन पूषणं देवं प्रीणामि। गुदं त्वपानं पायुर्नैत्यमरः (२।६।७३), स्त्रीत्वं छान्दसम् स्थूला चासौ गुदा च स्थूलगुदा तस्याः स्थूल भागेन अन्धाहीन् प्रीणामि। अन्धाश्च ते अहयश्च सर्पास्तान्। सर्पान् गुदाभिः स्थूलगुदातिरिक्तैर्गुदभागैः सर्पान् प्रीणामि। विह्रुत आन्त्रैः आन्त्रं पुरीतदित्यमरः (२।६।६६) अम गतौ भजते शब्दे अम्रति भजत्यनेनान्नमित्यन्त्रम् अन्ते भवा आन्त्राः अन्त्रसम्बन्धिनो मांसभागाः तैर्विह्रुतो देवान प्रीणामि। अपो वस्तिना वस्तिर्नाभेरधोद्वयोरित्यमरः (२।६।६३) वसति मूत्रं यस्मिन् स वस्तिः नाभेरधो वर्तमानं मूत्रपुटं तेनापो देवताः प्रीणामि। मुष्कोऽण्डोवृषणः कोशः (अमर० २।६।७६) अण्ड एवाण्डः ताभ्यां लिङ्गोभयपार्श्वस्थाभ्यां मांसपिण्डाभ्यां वृषणं देवं प्रीणामि। शेपो लिङ्गं तेन वाजिनं देवं प्रीणामि शिश्नो मेढ्रो मेहनशेपसी इति (२।६।७६) अमरः। शि निशाने शिनोति भगमिति शेपः सान्तोऽदन्तश्च। प्रजां रेतसा शुक्रं तेजो रेतसी च बीजवीर्येन्द्रियाणि चेति (२।६।६२) अमरः रीङ् स्रवणे रियते स्रवति रेतो वीर्यं तेन प्रजां देवतां प्रीणामि। मायुः पित्तं पतति स्रवते पित्तं धातुविशेषस्तेन चाषान् देवान् प्रीणामि। पातिमलोत्सर्गमिति पायुर्गुदमुक्तातिरिक्तं तेन गुदतृतीयभागेन प्रदरान् देवान् प्रीणामि। कूश्मान् शकपिण्डैः। शको देशे नृपे विशि। विशिविष्ठायां शकस्य विष्ठायाः पिण्डैः कूश्मान् देवान् प्रीणामि।" १५

अर्थात्- यजु० के २५ वें अध्यायके प्रारम्भमें ही श्री महीधराचार्य कहते हैं—

"...तत्र शादं दद्भिरित्यादि पृथिवीं त्वचेत्यन्तः संहिताभागो ब्राह्मणं न मन्त्राः। शादादयो देवाः दन्ताद्यङ्गानि।"

यहाँपर 'शाद दद्भिः' से लेकर 'पृथिवी त्वचा०'... मन्त्र ९ तक संहिता भाग है न कि ब्राह्मण भाग। शाद

---

१२ सन् १९३२ ई. में पं. महेन्द्रशास्त्री आर्यसमाज, अजमेर द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति।

१३ संवत् १९७२ वि. में आर्य पुस्तकालय, कुरसवाँ, कानपुर द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति।

१४ संवत् १९७३ श्रावणमें ब्रह्मान प्रेस, जगाधरीमें मुद्रित व लेखक द्वारा प्रकाशित, प्रथमवार।

१५ "शुक्लयजुर्वेदसंहिता श्री मदुव्वटाचार्य विरचित मन्त्रभाष्येण श्री मन्महीधराचार्य विरचित वेददीपेन च सहिता" तृतीय खण्डम्, पृष्ठ १२३३-१२३४। (सन् १९१२ ई. में चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी सिटी द्वारा प्रकाशित।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि देवता हैं और दन्त आदि अङ्ग हैं। उनके लिखनेका तात्पर्य यह है कि– इस २५ वें अध्यायके एक मंत्रसे ९ मंत्र तक पशुओंके विशेष विशेष अङ्गोंसे विशेष विशेष देवताओंके निमित्त स्वाहान्त शब्दोंसे आहुतियाँ देनी चाहिए। 'शाद' कोई देवता है, इसके लिए घोडेके दाँतोंकी आहुति दे। 'अदका' देवता है, उसके निमित्त दाँतोंकी जड मसूडोंको आहुति दे। इसी प्रकार इन नौ मंत्रोंमें घोडेके अङ्गोंको काट काट कर विशेष देवताओंका नाम लेकर आहुतियां डाले।

अब ७ वें मंत्रका जो भाष्य है उसका तात्पर्य है–'मोटी मोटी आंतोंसे पूषा देवताको प्रसन्न करता हूँ। घोडेकी मोटी मोटी गुदासे अन्धे सांपोंको प्रसन्न करता हूँ। अण्डकोषोंसे वृषभ देवताको प्रसन्न करता हूँ। घोडेके लिङ्ग (प्रजननेन्द्रिय) से वाजिन देवताको प्रसन्न करता हूँ। ... ...

विद्यावारिधि पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र— 'पदार्थ– (वनिष्ठुना) स्थूलांत्रसे (पूषणं) पूषा देवताको प्र० (स्थूल गुदया) गुदाके स्थूल भागसे (अन्धाहीन्) अन्धेसर्पोंकी प्र० (गुदाभिः) स्थूल गुदाके अतिरिक्त भागसे (सर्पान्) सर्पोंको प्र० (आन्त्रैः) अंत्र सम्बन्धी मांस भागसे (विन्हुतः) विन्हुत देवको प्र० (वस्तिना) नाभिके नीचेके भागसे (अपः- जल देवको (आण्डाभ्याम्) अण्डकोषोंसे (वृषणं) वृषणको (शेपेन) मेढ्रसे (वाजिनं) वाजीको (रेतसा) वीर्यसे (प्रजाम्) सन्ततिको (पित्तेन) पित्तसे (चाषान्) चाषदेवको (पायुना) गुदके तीसरे भागसे (प्रदरान्) प्रदरोंको (शकपिण्डैः) लीदके पिण्डोंसे (कूश्मान्) कूश्मोंको प्रसन्न करता हूँ।' १६

विद्यावारिधिजीने इसी भाष्यमें महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीके भाष्यपर उपालम्भ किया है, पर इनके व महीधरके भाष्यको पढकर किस व्यक्तिको वेदोंपर श्रद्धा हो सकती है? क्या वेदोंका महत्त्व ऐसी ही अनर्गल बातोंसे रहेगा? ऐसे अशुद्ध, भ्रष्ट, वाममार्ग प्रतिपादक और अश्लील वेदार्थको देखकर ही करोडों सूत्रधारी आर्य सन्तान हमसे पृथक् हो गए।

वेदोंमें अश्वके वधका सर्वथा ही निषेध है—

इमं मा हिंसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु।
(यजु. १३।४८)

इस मंत्रकी व्याख्यामें, शतपथ ब्राह्मणमें, निम्नलिखित लेख मिलता है। यथा—

एक शफो वा एष पशुर्यदश्वः, तं मा हिंसीरिति।
(शतपथ ब्राह्मण ७।५।२।३३)

इसका अभिप्राय यह है कि मंत्रमें, निश्चयसे एक शफ शब्दसे अश्वका ग्रहण है। इसलिए एक शफवाले पशु अर्थात् अश्वकी तू हिंसा न कर। १७

महर्षि दयानन्द सरस्वती— 'हे राजन्! तू (वाजिनेषु) संग्रामके कामोंमें (इमम्) इस (एक शफम्) एक खुरयुक्त (कनिक्रदम्) शीघ्र विकल व्यथाको प्राप्त हुए (वाजिनम्) वेगवाले (पशुम्) देखने योग्य घोडे आदि पशुको (मा) मत (हिंसीः) मार। ...'

भावार्थ— 'मनुष्योंको उचित है कि एक खुरवाले घोडे आदि पशुओं और उपकारक वनके पशुओंको भी कभी न मारें। जिनके मारनेसे जगत्की हानि और न मारनेसे सबका उपकार होता है उनका सदैव पालन–पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों उनको मारें।' १८

स्वयं पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ही इस मंत्रका अर्थ करते हुए लिखते हैं— 'हे अग्ने (इमम्) इस (कनिक्रदम्) अत्यन्त हींसनेवाले (वाजिनेषु) वेगवालोंसें (वाजिनम्) वेगवाले (एक शफम्) एक खुरवाले घोडे 'एक शफो वा एष पशुर्यदश्व' [७–५–२–३३ इति श्रुतेः] (पशुम्) पशुको (मा) मत (हिंसीः) पीडा देना। ...' १९

---

१६ शुक्लयजुर्वेद मिश्र भाष्य, उत्तरार्ध, पृष्ठ, १०३९–१०४० [संवत् १९५९ वि. में श्रीवेंकटेश्वर स्टीम यन्त्रालय, बम्बईमें मुद्रित व प्रकाशित]

१७ 'वैदिक पशुयज्ञ–मीमांसा' प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४३

१८ यजुर्वेद भाष्यम्, द्वितीयो भाग, तृतीयावृत्ति, पृष्ठ २२८

१९ 'यजुर्वेद संहिता' मिश्र भाष्य सहित, प्रथम भाग, पृष्ठ ५६–५५७ [संवद् १९५९ वि. में श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम यन्त्रालय, बम्बई द्वारा मुद्रित व प्रकाशित]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब वेदमें स्पष्ट रूपसे अश्ववधका निषेध है और स्वयं मिश्रजी भी अपने भाष्यमें स्वीकार कर रहे हैं तब यजु० २५।७ के भाष्यमें जो महीधर और मिश्रजीने अर्थ किया है वह वेदकी अन्तः साक्षीसे ही खण्डित हो जाता है।

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' मीमांसातीर्थ का भाष्य भी महर्षि दयानन्दजीके भाष्यसे मिलता जुलता है—

'भा०—(वनिष्टुना पूषणम्) स्थूल आँतोंसे पूषा नाम अधिकारीकी तुलना करो। (स्थूल गुदया अन्धाहीन्) अन्धे साँपोंकी स्थूल गुदाके भागसे तुलना करे। (गुदाभिः सर्पान्) गुदाओंसे साँपोंकी तुलना करो। (आन्त्रैः विन्हुतः) शरीरकी आँतोंसे वन्य कुटिलगामी सर्पोंकी तुलना करो। (वस्तिना अपः) राष्ट्रके भीतर जल, जलाशयों, नदियोंकी वस्ति भागसे तुलना करो। (वृषणमाण्डाभ्याम्) वर्षणकारी मेघकी वीर्य-सेचन-समर्थ अण्ड कोशोंसे तुलना करो। (वाजिनम्) वीर्यवान् बलवान् पुरुषकी शरीरमें (शेपेन) पुलिंलगसे तुलना करो। (रेतसा प्रजाम्) राष्ट्रकी प्रजाकी शरीरस्थ वीर्यसे तुलना करो। (चाषान् पित्तेन) खाने योग्य पदार्थोंकी शरीरस्थ पित्त पदार्थसे तुलना करो। (पायुना प्रदरान्) शरीरस्थ पायु या गुदामार्गसे राष्ट्रके भीतर विशेष फटे फटे दरार भागोंकी तुलना करो। (कूश्मान्) 'कूश्म' अर्थात् शासकपदाधिकारी अथवा अग्निके बलसे फेंके जानेवाले गोलों और अग्निमय पदार्थोंकी (शकपिण्डैः) शक्तिमान् पिण्डोंके समान शरीरमें स्थित विष्ठाके पिण्डोंसे तुलना करो।'

अथवा—(पूषणम्) पोषक पुरुषको उससे (वनिष्टुना) याचना द्वारा शक्ति और अन्न प्राप्त करो (स्थूल गुदया सहितान् अन्धाहीन् गुदया सर्पान्) मोटी गुदासे युक्त अंधे सांपोंको और गुदा भागसे साधारण सांपोंको पकड कर वश करो। (आन्त्रैः विन्हुतः) विशेष कुटिल सांपोंको उनकी आंतोंसे वश करो। (वस्तिना अपः) वस्ति क्रिया द्वारा जलोंको प्राप्त करो। (अण्डाभ्याम् वृषणम्) अण्डकोषोंसे वीर्याधार स्थानको पूर्ण करो। (शेपेन वाजिना) लिङ्ग भागसे वीर्यवान् अश्व या वीर्यवान् पुरुषकी परीक्षा करो। (रेतसः) वीर्यसे (प्रजाम्) प्रजाको प्राप्त करो। (पित्तेन) पित्तके बलसे (चाषान्) युक्त पदार्थोंको पचाओ। (प्रदरान् पायुना) गुदा भागसे पेटके भीतर भागोंको स्वच्छ और बलवान् करो। (शक पिण्डैः) शक्तिके संघोंने (कूश्मान्) शासन बलोंको प्राप्त करो।' २०

इनके अर्थमें भी शारीरिक विज्ञानका प्रदर्शन है।

इन उपर्युक्त सभी विवेचनोंके आधार पर यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि महर्षि दयानन्दजी सरस्वतीका भाष्य उचित है। पौराणिकोंने जो भ्रान्तियाँ फैलाई हैं यह उन लोगोंके कलुषित हृदयका उद्गार है।

महर्षि दयानन्दजीके भाष्यमें 'शरीर विज्ञान' की चर्चा स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर हो रही है।

ø ø ø

२० 'यजुर्वेद-संहिता भाषाभाष्य (द्वितीयखण्ड), द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ३४३-३४४.

संस्कृत-पाठ-माला

[२४ भाग]

(संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

प्रतिदिन एक घण्टा अध्ययन करनेसे एक वर्षमें आप स्वयं रामायण-महाभारत समझ सकते हैं।

२४ भागोंका मूल्य	१२.००	१.२५
प्रत्येक भागका मूल्य	.५०	.१२

संस्कृत पुस्तकें

२ सूक्ति-सुधा	.३१	.०६
३ सुबोध संस्कृत-ज्ञानम्	१.२५	.२५
४ सुबोध संस्कृत व्याकरण भाग १ और २, प्रत्येक भाग	.५०	.१२
५ साहित्य सुधा (पं. मेधाव्रतजी) भाग १	१.२५	.२५

मंत्री— स्वाध्याय मण्डल, पो- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी, [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हमारी संस्था एक स. २१ सन् १८६० ई. संख्या ४६३ पर रजि० है। नाम

संस्था जीवनप्राकृतिक चिकित्सालय

प्राकृतिक चिकित्सामें नई क्रांतिका शुभ संदेश

लेखक एवं प्रकाशक— श्री भरतसिंह वैद्य, प्राकृतिक चिकित्सक सी० ३४१, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली। पृष्ठ २५४, मूल्य रु. ३.००

"प्रस्तुत पुस्तकमें पंचमहाभूतोंके आधार पर रोग निवारणकी विधि और स्वस्थ रहनेके उपायों पर प्रकाश डाला गया है। आयुर्वेद तथा प्राकृतिक चिकित्साके अपने ज्ञान और अनुभवको लेखकने इतने सरल और सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया है कि एक साधारण पाठक भी उसको पढकर लाभ उठा सकता है। स्वास्थ्य और सदाचार सम्बन्धी वैदिक मन्त्र और उनके भावार्थ देकर सृष्टिविज्ञानकी व्याख्या की गई है। शरीरकी रचना और उसके विविध अङ्गोंकी क्रियाओंका वर्णन करके रोगोंके निदान एवं उपचारके तरीके बताए गए हैं। जिन रोगियोंने इस चिकित्सा प्रणालीको अपनाकर अपने असाध्य एवं जीर्ण रोगोंसे मुक्ति पाई, उनका विवरण पढनेसे पुस्तककी प्रमाणिकता सिद्ध होती है। लेखककी मान्यता है कि प्रायः सभी रोग मिट्टीके प्रयोगसे दूर किए जा सकते हैं। स्वास्थ्य और उपचारमें दिलचस्पी रखनेवाले पाठक इस उपयोगी पुस्तकका स्वागत करेंगे, ऐसी आशा है।"

११–३–६२ दैनिक हिन्दुस्तान, नई देहली

मैंने सन् १९२१ ई. से डा. लुई कोहनीकी प्रणाली व अन्य प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालियोंका अध्ययन आरम्भ किया, सन् १९३२ ई. तक रोगियों पर भी परीक्षण करता रहा, सन् १९३३ ई. से मैंने आयुर्वेदिक औषधालय मेरठ शहरमें खोल दिया, इसे २५ वर्ष तक अन्य स्थानोंमें भी चलाया। साथमें कभी कभी प्राकृतिक चिकित्साके प्रयोग भी करता रहा, इसके साथ पंचमहाभूत विज्ञानके अनुसंधानके लिये महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीका वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका व यजुर्वेदभाष्यको व अन्य दर्शनोंसे प्रमाण संग्रहकरके वानप्रस्थ समान जीवन व्यतीत करनेका संकल्प लिया अर्थात् सन् १९५८ में औषधालय बिलकुल बन्द कर दिया और जुलाई १९५८ में स्वर्गीय महात्मा गांधीजीकी निसर्गोपचारकी नियमावली उरुलीकाचन (पूना) से मंगाकर ग्रामीण जनताको चिकित्सामें आत्मनिर्भर बनानेके उद्देश्यको पाकर मिट्टीकी पट्टी द्वारा सरल–सूक्ष्म सिद्धांत आरम्भ किया। जो पांच वर्षतक सैंकडों रोगियोंपर शहरों–कस्बों–ग्रामोंमें निरीक्षण–परीक्षण–चिकित्सा द्वारा सभी रोगोंपर एक समान लाभकारी सिद्ध हुआ। इसी सिद्धांतसे टबस्नान–ऐनिमा, निराहार उपवास अन्य उपकरणकी जरूरत समाप्त हो गई है। और शरीरकी रचनाके मूलाधार चार स्तम्भ निश्चय हुए अन्न–शुक्र (वीर्य) श्रम–निद्रा इनकी शुद्धि पुष्टिसे शरीर व आत्माके सब रोग नष्ट हो जाते हैं। इस ज्ञानको लिपिबद्ध करनेके लिये दो पुस्तकें प्रकाशित की हैं। प्रथम जीवनसंदेश (प्राणचिकित्सा) जिसका मूल्य ३.०० है। दूसरी पंचमहाभूत विज्ञान पृष्ठ १६६ मूल्य १.०० डाकव्यय पृथक् है। चिकित्सालय पर निःशुल्क चिकित्सा होती है। विद्यार्थियोंके लिये शिक्षण, परीक्षण, चिकित्साविधि सिखानेका प्रबन्ध करनेका निश्चय है।

पता नं. १ भरतसिंह वैद्य, मंत्री- 'जीवन प्राकृतिक चिकित्सालय' गालिबपुर, डा. खास, जि. मुजफ्फरनगर

पता नं. २ डा. रामचन्द्रसिंहजी, C 341, सरोजनी नगर, नई देहली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४८१ असाम्योजो बिभृथा सुदानवो ऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥

[४०]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- ब्रह्मणस्पतिः । छन्दः- प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

४८२ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥
४८३ त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥
४८४ प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४८१] हे (सु-दानवः) अच्छे दान देनेवाले वीर मरुत् ! (अ-सामि ओजः) अधूरा नहीं, ऐसा समूचा बल एवं (अ-सामि शवः) अविकल शक्ति (बिभृथ) तुम धारण करते हो, हे (धूतयः मरुतः) शत्रुदलको विकंपित करनेवाले वीर मरुद्गण ! (ऋषि-द्विषे) ऋषियोंसे द्वेष करनेवाले (परि-मन्यवे) क्रोधी शत्रुको धराशायी करनेके लिए (इषुं न) बाणके समान (द्विषं) द्वेष करनेवाले शत्रुको ही (सृजत) उसपर छोड दो ॥ १० ॥

[४०]

[४८२] (ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञानके स्वामिन् ! (उत्तिष्ठ) उठो (देवयन्तः त्वा ईमहे) देवत्वकी इच्छा करनेवाले हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं (सुदानवः मरुतः उप प्र यन्तु) उत्तम दानी मरुत् वीर साथ साथ रहकर यहां आ जायँ (इन्द्र) हे इन्द्र ! (सचा प्राशूः भव) सबके साथ रहकर इस सोमरसका पान कर ॥ १ ॥

[४८३] (सहसः पुत्र) हे बलके लिये उत्पन्न होनेवाले वीर ! (मर्त्यः) मनुष्य (हिते धने) युद्ध छिड जानेपर (त्वां इत् उपब्रूते हि) तुम्हें ही सहायतार्थ बुलाता है (मरुतः) हे मरुतो ! (यः वः आचके) जो तुम्हारे गुण गाता है, (स्वश्व्यं सुवीर्यं आ दधाति) वह उत्तम घोडोंसे युक्त और उत्तम वीरतावाला धन पाता है ॥ २ ॥

[४८४] (ब्रह्मणस्पतिः प्र एतु) ज्ञानी ब्रह्मणस्पति हमारे पास आ जावे (सूनृता देवी प्र एतु) सत्यरूपिणी देवी भी आवे (देवाः) सब देव (नर्यं पङ्क्तिराधसं यज्ञं वीरं) मनुष्योंके लिये हितकारी, पंक्तिके संमान योग्य, उत्तम यज्ञ करनेवाले वीरको (नः अच्छ नयन्तु) हमारे पास ले आवें ॥ ३ ॥

भावार्थ— वीर मरुतोंके समीप अविकल रूपसे शारीरिक बल तथा अन्य सामर्थ्य भी है, किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं है। वे इस असीम सामर्थ्यका प्रयोग करके उस शत्रुको दूर हटा दें, जो ऋषियोंका अर्थात् विद्वान् तथा श्रेष्ठ ज्ञानियोंसे द्वेषपूर्ण भाव रखता हो; या उसीपर दूसरे शत्रुको छोडकर उसे विनष्ट कर डाले ॥ १० ॥

हे ज्ञानी उठो। राष्ट्रमें क्षात्रवृत्तिको जगाओ। जो देवत्वका भाव अपने अन्दर बढानेके इच्छुक हों, उन्हें संगठित किया जाए। मातृभूमिके लिए आत्मसमर्पण करनेवाले वीर समीप आकर प्रगति करनेके लिए आगे बढें ॥ १ ॥

ये क्षत्रियवीर बलके कार्यके लिए ही उत्पन्न हुए हैं। बलसे होनेवाला हर एक कार्य ये आनन्दसे करते हैं। मनुष्य युद्ध छिड जाने पर उन वीरोंको ही अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं। ये क्षत्रियवीर अपने पास उत्तम घोडे रखते हैं, वे पराक्रमी शूरवीर भी होते हैं ॥ २ ॥

वीर पुरुष सब मानवोंके हित करनेमें तत्पर रहें। शत्रुओंको अपनी वीरतासे दूर करें। श्रेष्ठोंका सत्कार करें, प्रजाओंमें संगठन करे और दीनदुःखियोंकी सहायता करे, ऐसा करनेसे वह अपने आगमनसे पंक्तियोंकी शोभा बढाता है ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४८५ यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

४८६ प्र नूनं ब्रह्मणस्पति–र्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५ ॥

४८७ तमिद् वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥

४८८ को देवयन्तमश्नवज् जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थिता–ऽन्तर्वावत् क्षयं दधे ॥ ७ ॥

अर्थ— [४८५] (यः वाघते सूनरं वसु ददाति) जो यज्ञकर्ताको उत्तम धन देता है (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यश प्राप्त करता है (तस्मै सुवीरां सुप्रतूर्तिं अनेहसं इळां आ यजामहे) उसके हितार्थ हम उत्तम वीरोंसे युक्त, शत्रुका हनन करनेवाली, अपराजित मातृभूमिकी प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

[४८६] (यस्मिन् इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे) जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा देवोंने अपने घर बनाये हैं। (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्मणस्पति (उक्थ्यं मंत्रं नूनं प्र वदति) पवित्र मंत्रका अवश्य ही उच्चारण करता है ॥ ५ ॥

[४८७] (देवाः) हे देवों ! (तं इत् शंभुवं अनेहसं मन्त्रं) उस सुखदायी अविनाशी मंत्रको (विदथेषु वोचेम) हम यज्ञमें बोलते हैं (नरः) हे नेता लोगों ! (इमां वाचं प्रतिहर्यथ च) इस मंत्ररूप वाणीकी यदि प्रशंसा करोगे (विश्वा इत् वामा वः अश्नवत्) तो सभी सुख तुम्हें मिलेंगे ॥ ६ ॥

[४८८] (देवयन्तं जनं कः अश्नवत्) देवत्वकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके पास ब्रह्मणस्पतिको छोडकर कौन भला दूसरा आवेगा (वृक्तबर्हिषं कः) आसन फैलानेवाले उपासकके पास दूसरा कौन आवेगा (दाश्वान् पस्त्याभिः प्रप्र अस्थित) दाता अपनी प्रजाके साथ प्रगति करता है (अन्तर्वावत् क्षयं दधे) संतानोंवाले घरका आश्रय करते हैं ॥७॥

भावार्थ— इसी वीरके लिए उत्तम वीरोंको उत्पन्न करनेवाली, शत्रुओंका नाश करनेवाली, अपराजिता तथा अन्नदायी मातृभूमिकी हम प्रार्थना करते हैं। मातृभूमिके लिए हम सर्वस्वका यज्ञ करते हैं। क्योंकि जो धनका दान करता है, वह अक्षय यश कमाता है ॥ ४ ॥

यह ज्ञानका देव ब्रह्मणस्पति ऐसे उत्तम और पवित्र मंत्र बोलता है, जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देव अपना घर बनाकर निवास करते हैं। इसीलिए ये मंत्र सबका कल्याण करनेवाले, पराभव और विनाशसे बचानेवाले होते हैं, इसीलिए युद्धके समय इन मंत्रोंका उच्चारण किया जाता है ॥ ५–६ ॥

देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ब्रह्मणस्पति अर्थात् ज्ञानके देवको बुलाता है। क्योंकि ज्ञानके बिना देवत्वकी प्राप्ति असंभव है। अतः जो उपासक इस ज्ञान देव ब्रह्मणस्पतिके लिए आसन बिछाता है, उसकी उपासना करता है, वह अपनी प्रजाके साथ प्रगति करता है ॥ ७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४८९ उप॑ क्ष॒त्रं पृ॑ञ्ची॒त हन्ति॒ राज॑भि॒र्भ॒ये चि॑त् सुक्षि॒तिं द॑धे ।
नास्य॑ व॒र्ता न त॑रु॒ता म॑हाध॒ने नार्भे॑ अस्ति व॒ज्रिण॑ः ॥ ८ ॥

[४१]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- वरुणमित्रार्यमणः, ४-६ आदित्याः । छन्दः- गायत्री ।)

४९० यं रक्ष॑न्ति॒ प्रचे॑तसो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । नू चि॒त् स द॑भ्यते॒ जन॑ः ॥ १ ॥

४९१ यं बा॒हुते॑व॒ पिप्र॑ति॒ पान्ति॒ मर्त्यं॑ रि॒षः । अरि॑ष्टः॒ सर्व॑ एधते ॥ २ ॥

४९२ वि दु॒र्गा वि द्विषः॑ पु॒रो घ्नन्ति॒ राजा॑न एषाम् । नय॑न्ति दुरि॒ता ति॒रः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४८९] (ब्रह्मणस्पतिः क्षत्रं उप पृञ्चीत) ब्रह्मणस्पति क्षात्रबलका संचय करता है (राजभिः हन्ति) राजाओंकी सहायतासे यह शत्रुओंको मारता है (भये चित् सुक्षितिं दधे) महा भयके उपस्थित होने पर भी यह उत्तम धैर्यको धारण करता है । (वज्रिणः अस्य) इस वज्रधारीके साथ होनेवाले (महाधने) बडे युद्धमें (न वर्ता अस्ति) इसका निवारण करनेवाला है (न तरुता) और पराजय करनेवाला नहीं है (न अर्भे) और छोटे युद्धमें भी कोई नहीं है ॥ ८ ॥

[४१]

[४९०] (प्रचेतसः वरुणः मित्रः अर्यमा) उत्तम ज्ञानी वरुण, मित्र, अर्यमा ये देव (यं रक्षन्ति) जिसकी सुरक्षा करते हैं, (सः जनः नू चित् दभ्यते ?) उस मानवको कौन भला दबा सकता है ? ॥ १ ॥

[४९१] (यं बाहुता इव पिप्रति) ये देव जिसका अपने बाहुबलसे जैसा हो वैसा पोषण करते हैं (मर्त्यं रिषः पान्ति) और जिस मानवको हिंसक शत्रुसे बचाते हैं , (सर्वः अरिष्टः एधते) वह सब प्रकारसे अहिंसित होता हुआ बढता ही है ॥ २ ॥

१ प्रचेतसः यं पान्ति स अरिष्टः एधते— ज्ञानी जिसकी रक्षा करते हैं, वह बढता है ।

[४९२] (राजानः एषां पुरः दुर्गा वि घ्नन्ति) राजाके समान ये देव शत्रुओंके नगरों और किलोंका नाश करते हैं (द्विषः वि) द्वेष करनेवालोंका भी नाश करते हैं (दुरिता तिरः नयन्ति) और पापोंसे परे पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— क्षात्रशक्तिको संगठित करना चाहिए, उसे बढाना चाहिए । वह इतनी बढे कि इस शूरवीरके साथ होनेवाले बडे अथवा छोटे संग्राममें इसको परास्त करनेवाला कोई न रहे । ऐसा यह वीर अपने दलोंके साथ शत्रुओंपर हमला करके उन्हें विनष्ट करे ॥ ८ ॥

शत्रुका निवारण करना चाहिए । शत्रुके निवारण करनेका मुख्य साधन 'ज्ञान और विज्ञान' है । अतः ज्ञानी जन जिसकी सुरक्षा करते हैं, वह मनुष्य दबाया नहीं जा सकता । जिसके पीछे ज्ञानकी शक्ति है, वह मनुष्य कभी पराधीन नहीं होता । यह ज्ञानका महत्त्व है । केवल सुरक्षा ही मुख्य नहीं है अपितु ज्ञानपूर्वक ज्ञान विज्ञान द्वारा होनेवाली सुरक्षा ही मुख्य है ॥ १ ॥

ज्ञानी जिसका पालन करते हैं, ज्ञानी जिसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंसे बचाते हैं, वह विनाशको प्राप्त नहीं होता । इसके विपरीत वह बढता जाता है । ज्ञानी जिसका पोषण करते हैं और जिसको हिंसकोंसे सुरक्षित रखते हैं, वह कभी विनष्ट नहीं होता ॥ २ ॥

ज्ञानी क्षत्रियवीर राजपुरुष शत्रुओंके नगरों और किलोंको तोड देते हैं । अपने मित्रोंके विद्वेषक वैरियोंका नाश करते हैं और उन्हें पापोंसे बचाकर दूर पहुंचा देते हैं ॥ ३ ॥

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४९३ सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ ४ ॥
४९४ यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा । प्र वः स धीतये नशत् ॥ ५ ॥
४९५ स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥ ६ ॥
४९६ कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः । महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥
४९७ मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् । सुम्नैरिद् व आ विवासे ॥ ८ ॥
४९८ चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयादा निधातोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ— [४९३] (आदित्यासः) हे अदितिके पुत्रों ! (ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः) सत्य मार्गसे जानेवालेके लिये मार्ग सुगम और कण्टकरहित होता है (अत्र वः अवखादः न अस्ति) इससे यहां तुम्हारे लिये बुरा खाद्य कभी नहीं मिलता ॥ ४ ॥

१ ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः च— सत्यके मार्गसे जानेवालेके लिए इस विश्वमें सुगम और कण्टक-रहित मार्ग मिलता है ।

[४९४] (नरः आदित्याः) हे नेता, अदितिके पुत्रों ! (यं यज्ञं ऋतुना पथा नयथ) जिस यज्ञको तुम सरल मार्गसे चलाते हो (सः वः धीयते प्र नशत्) वह यज्ञ आपके ध्यानमें भला कैसे नष्ट होगा ? ॥ ५ ॥

[४९५] (सः मर्त्यः अस्तृतः) वह मनुष्य विनष्ट न होता हुआ (रत्नं विश्वं वसु अच्छ गच्छति) रत्न आदि सब धन सहजहीसे प्राप्त करता है (उत त्मना तोकं) और अपने लिये पुत्र भी प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

[४२६] (सखायः) हे मित्रो ! (मित्रस्य अर्यम्णः बरुणस्य) मित्र, अर्यमा और वरुणके (महि प्सरः स्तोमं कथा राधाम) महत्त्वके अनुरूप स्तोत्र हम किस तरह सिद्ध करेंगे ? ॥ ७ ॥

[४९७] (देवयन्तं घ्नन्तं) देवत्व-प्राप्तिके इच्छुकका जो नाश करता है, (वः मा प्रति वोचे) आपसे हम कहते हैं कि उससे हमारा भाषण भी न होवे, (शपन्तं मा) उसी तरह गाली देनेवालेके साथ भी न भाषण होवे (सुम्नैः इत् वः आ विवासे) शुभ संकल्पोंके द्वारा ही आपको हम तृप्त करें ॥ ८ ॥

[४९८] (दुरुक्ताय न स्पृहयेत्) दुष्ट भाषण करनेकी इच्छा कोई न करे, (चतुरः ददमानात्) चारों पुरुषार्थोंको जो धारण करता है (आ निधातोः बिभीयात्) उससे विरोध करनेवालेसे मनुष्य डरे ॥ ९ ॥

भावार्थ— सत्यमार्गसे जानेवालेके लिए इस विश्वमें सुगम और कण्टक-रहित मार्ग मिलता है । एकबार सत्यके मार्गसे जानेका निश्चय करने पर आगेका मार्ग सरल हो जाता है । इसे अयोग्य और निन्द्य भोजन कभी नहीं मिलता ॥ ४ ॥

जो सन्मार्गसे जाता है, भला वह विनष्ट कैसे हो सकता है । अथवा जिसे देव स्वयं सन्मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा देते हैं, उसको विनष्ट करनेका साहस किसीमें भी नहीं है ॥ ५ ॥

ऐसा मनुष्य कभी भी विनष्ट नहीं होता, इसके विपरीत वह हर तरहके धन प्राप्त करता है और उत्तम औरस संतान भी प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

राष्ट्रके वीर श्रेष्ठवीर, मित्रवत् व्यवहार करनेवाले, श्रेष्ठताके विचार करनेवाले और देव अर्थात् सज्जन और संगठन-कर्ता हों, ये ज्ञानी हों । सभी मानवोंको चाहिए कि वे इन गुणोंको धारण करें और उत्तम देव बननेका यत्न करें ॥ ७ ॥

देवत्वको पानेके लिए प्रयत्न करनेवालोंका जो विनाश करते हैं, ऐसे दुष्टोंके साथ बोलना भी नहीं चाहिए । स्वयं तो ऐसे दुष्टोंसे व्यवहार करना ही नहीं चाहिए, इस पर यदि वे दुष्ट स्वयं आकर बोलने भी लगें, तो भी उनसे बातचीत करनी नहीं चाहिए । इस प्रकार उन्हें पूर्णरूपसे बहिष्कृत कर देना चाहिए, इसी प्रकार गालीगलौज करनेवालेके साथ भी नहीं बोलना चाहिए ! सदा उत्तम मन और शुभ संकल्पोंके साथ ही ईश्वरकी सेवा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

बुरे शब्द बोलनेवालेको अपने सम्मुख आने भी नहीं देना चाहिए । चारों पुरुषार्थको करनेका सामर्थ्य धारण करनेवालेको जो नीचे दबाता है, उससे डरना चाहिए, क्योंकि वह कब और किसका घात करेगा, इसका कुछ भी पता नहीं । इसलिए ऐसोंसे दूर ही रहना चाहिए ॥ ९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[४२]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री ।)

४९९ सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥
५०० यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥
५०१ अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥
५०२ त्वं तस्य द्वयाविनो ऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥
५०३ आ तत् ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥
५०४ अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥

---

[४२]

अर्थ— [४९९] (विमुचो नपात् पूषन्) हे मुक्त करनेवाले पूषा ! (अध्वनः सं तिर) हमें मार्गके पार पहुंचा दो (अंहः वि) हमें पापके परे कर दो । (देव नः पुरः प्र सक्ष्व) हे देव हमें आगे बढाओ ॥ १ ॥

[५००] (पूषन्) हे पूषा ! (यः अघः वृकः दुःशेवः) जो कोई पापी, क्रूर और; सेवाके अयोग्य शत्रु (नः आदिदेशति) हमें आदेश देता हो, (तं पथः अप जहि स्म) उसको मार्गसे दूर करो ॥ २ ॥

[५०१] (त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितं) उस बटमार चोर कपटीको (स्रुतेः दूरं अधि अप अज) मार्गसे दूर करके विनष्ट करो ॥ ३ ॥

[५०२] (त्वं) तू (कस्य चित् तस्य द्वयाविनः अघशंसस्य) किसी भी उस दुरंगे पापीके (तपुषिं) शरीरको (पदा अभि तिष्ठ) अपने पांवसे दबाकर खडा रह ॥ ४ ॥

[५०३] (मन्तुमः दस्र पूषन्) हे शत्रुका दमन करनेवाले ज्ञानी पूषा ! (ते तत् अवः आ वृणीमहे) तुम्हारा वह रक्षा-सामर्थ्य हम चाहते हैं (येन पितॄन् अचोदयः) कि जिससे तुमने पितरोंको उत्साह दिया था ॥ ५ ॥

[५०४] (विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम) हे विश्वमें सौभाग्ययुक्त और सुवर्णके अलंकारोंसे युक्त (अध नः धनानि सुषणा कृधि) अब हमें धनोंको और उत्तम दानोंको अर्पण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य पुष्टि चाहता हो, वह अपने मुक्तिके मार्गकी तलाश करे और उस मार्ग पर चलता हुआ वह दुःखके पार पहुंच जाए। अपने उन्नतिके मार्गको निष्कण्टक करे। अपने आपको पापसे बचावे और इस प्रकार प्रगति करे ॥ १ ॥

जो पापी, क्रूर और सेवाके अयोग्य मनुष्य सज्जनों पर हुकूमत करता हो, उसे अपने मार्गसे हटा देना चाहिए। दुष्टकी आज्ञा कोई न माने ॥ २ ॥

बटमार, चोर, कपटी, मार्गके बीचमें छिपकर राहगीरोंको लूटनेवाले ऐसे व्यक्तियोंको सबके लिए विनष्ट कर देना चाहिए ॥ ३ ॥

दुरंगे पापीको अपने पैरके नीचे दबाकर रखना चाहिए। ऐसे दुरंगी चालवाले मनुष्य समाजके लिए बडे खतरनाक होते हैं। जो एक जगह जाकर कुछ और कहते हैं और दूसरी जगह जाकर कुछ और कहते हैं, वे समाजको विनाशकी ओर ले चलते हैं और वे समाजको गर्तमें गिरा देते हैं ॥ ४ ॥

राष्ट्रका पोषक शत्रुओंका दमन करनेवाला हो, जब राष्ट्र चारों ओरसे शत्रुओंसे रहित हो, तभी वह शान्तिसे रहकर सामर्थ्यशाली हो सकता है। शत्रुओंको दूर करनेका सामर्थ्य सभी मनुष्योंमें हों। पर यह कार्य तभी हो सकता है, जब राष्ट्रके रक्षक सत्कर्मसे प्रवृत्त हों। पर जब राष्ट्रके रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं, तब राष्ट्रका पतन निस्सन्देह ही समझना चाहिए ॥ ५ ॥

जिसके पास सेवन करने योग्य धन होता है, जिसके पास सब सुखके साधन प्राप्त हों, वही सच्चा सौभाग्यशाली है। जिसके पास अपार सम्पत्ति होनेपर भी जो कंजूसी करता है, उससे ज्यादा दुर्भाग्यशाली और कोई नहीं हो सकता। ऐसे उत्तम धनको अच्छे कामोंमें ही अर्पित करना चाहिए ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५०५ अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥
५०६ अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥
५०७ शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥
५०८ न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥

[४३]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- रुद्रः ३, रुद्रः मित्रावरुणौ च ७-९ सोमः । छन्दः- गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।)

५०९ कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ॥ १ ॥

अर्थ— [५०५] (सश्चतः नः अति नय) बाधा करनेवाले दुष्टोंसे हमें पार ले जाओ (नः सुगा सुपथा कृणु) हमें सुगम उत्तम मार्गसे ले चलो (पूषन्) हे पूषन् ! (इह क्रतुं विदः) तुम्हें यहांके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ७ ॥

[५०६] (पूषन्) हे पूषन् ! (सुयवसं अभि नय) उत्तम जौंवाले देशमें हमें ले चलो । (अध्वने नवज्वारः न) मार्गमें नवीन संताप न होने पावे । (हे पूषन्) हे पूषन् ! (इह क्रतुं विदः) तुम्हें यहांके कर्तव्यका पता है ॥ ८ ॥

[५०७] (पूषन्) हे पूषन् ! (शग्धि) हमें सामर्थ्यवान् बनाओ (पूर्धि) हमें धनधान्यसे संपन्न करो । (प्र यंसि) हमें संपत्तिमान् करो, (शिशीहि) हमें तेजस्वी करो । (उदरं प्रासि) हमारे पेटको भर दो । (पूषन्) हे पूषन् ! (इह क्रतुं विदः) तुम्हें यहांके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ९ ॥

[५०८] (पूषणं न मेथामसि) हम पूषाको भूल नहीं सकते (सूक्तैः अभि गृहीमसि) सूक्तोंसे उनकी स्तुति करते हैं (दस्मं वसूनि ईमहे) दर्शनीय धनोंको हम चाहते हैं ॥ १० ॥

[४३]

[५०९] (प्रचेतसे) विशेष ज्ञानी (मीळ्हुष्टमाय) अत्यंत सुखदायी (तव्यसे रुद्राय) महान् रुद्रके लिये (हृदे कत् शंतमं वोचेम) हृदयसे कब शान्तिपाठकके स्तोत्र बोलेंगे ? ॥ १ ॥

भावार्थ— उन्नतिके मार्गमें बाधा डालनेवाले दुष्टोंको दूर करना चाहिए । सुखसे जाने योग्य उत्तम मार्गोंको दूर करना चाहिए और राष्ट्रको उन्नत करनेवाले कर्तव्योंको जानना चाहिए ॥ ७ ॥

अपने राष्ट्रको उत्तम धन धान्यसे पूर्ण करना चाहिए । जो भूमि उपजाऊ नहीं है, उसे उपजाऊ बनाना चाहिए । राष्ट्रमें किसी प्रकारका रोग न हो, कोई कष्ट न हो, कोई सन्ताप न हो ॥ ८ ॥

सभी प्रजाजनको समर्थ बनना चाहिए, सभी कर्म पूर्ण करने चाहिए, सभीको सम्पन्न बनना चाहिए, तेजस्वी बनना चाहिए । अपने शस्त्रास्त्रोंको सदा तीक्ष्ण करना चाहिए और सदा उत्साहित रहना चाहिए ॥ ९ ॥

जो हमारा पोषण करता है, उसका उपकार कभी नहीं भूलना चाहिए । उसकी हमेशा प्रशंसा करनी चाहिए और उसकी धनादिसे हमेशा सहायता करनी चाहिए ॥ १० ॥

यह रुद्र देव विशेष ज्ञानी, रोग दूर करके आनन्द बढानेवाला, आयु बढानेकी शक्ति बढानेवाला, रोगोंके कारणोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है । ऐसे ही गुण राष्ट्रके वीरोंको भी धारण करने चाहिए ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५१० यथा॑ नो॒ अदि॑ति॒: कर॒त् पश्वे॒ नृभ्यो॒ यथा॒ गवे॑ । यथा॑ तो॒काय॑ रु॒द्रिय॑म् ॥ २ ॥

५११ यथा॑ नो मि॒त्रो वरु॑णो॒ यथा॑ रु॒द्रश्चिके॑तति । यथा॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सः ॥ ३ ॥

५१२ गा॒थप॑तिं मे॒धप॑तिं रु॒द्रं जला॑षभेषजम् । तच्छं॒योः सु॒म्नमी॑महे ॥ ४ ॥

५१३ यः शु॒क्र इ॑व॒ सूर्यो॒ हिर॑ण्यमिव॒ रोच॑ते । श्रेष्ठो॑ दे॒वानां॒ वसु॑ः ॥ ५ ॥

५१४ शं नः॑ कर॒त्यर्व॑ते सु॒गं मे॒षाय॑ मे॒ष्ये । नृभ्यो॒ नारि॑भ्यो॒ गवे॑ ॥ ६ ॥

५१५ अ॒स्मे सो॑म॒ श्रिय॒मधि॒ नि धे॑हि श॒तस्य॑ नृ॒णाम् । महि॒ श्रव॑स्तुविनृ॒म्णम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [५१०] (अदितिः नः रुद्रियं यथा करत्) अदिति हमारे लिये रोग दूर करनेका चिकित्साका उपाय जैसा करे (यथा पश्वे नृभ्यः गवे) वैसा ही पशु, मानव, गाय (यथा तोकाय) और बालबच्चोंके लिये भी करे ॥ २ ॥

[५११] (मित्रः वरुणः नः यथा चिकेतति) मित्र और वरुण हमारे लिये हित करना जैसा जानता है (रुद्रः यथा चिकेतति) रुद्र जैसा जानता है (सजोषसः विश्वे) वैसा ही सब उत्साही देव जानते हैं ॥ ३ ॥

[५१२] (गाथपतिं मेधपतिं) गाथाओंके स्वामी, यज्ञोंके प्रभु (जलाषभेषजं रुद्रं) जलचिकित्सक रुद्रके पाससे (शंयोः) हम शान्तिकी प्राप्ति और अनिष्टको दूर करनेसे मिलनेवाला (तत् सुम्नं ईमहे) वह सुख हम प्राप्त करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

[५१३] (यः शुक्रः इव सूर्यः) जो सामर्थ्यवान् होनेसे सूर्यके समान (हिरण्यं इव रोचते) तथा सुवर्णके समान प्रकाशता है (देवानां श्रेष्ठः वसुः) वह देवोंमें वैभववान् है ॥ ५ ॥

[५१४] (नः अर्वते मेषाय मेष्ये नृभ्यः नारिभ्यः गवे) हमारे घोडे, मेढे, मेढी, पुरुषों, नारियों और गौके लिये (सुगं शं करति) वह रुद्र देव सुख प्रदान करता है ॥ ६ ॥

[५१५] (सोम) हे सोम ! (नृणां शतस्य) हमें सैंकडों मानवोंके लिये (महि तुविनृम्णं श्रवः) पर्याप्त होनेवाला महान् तेजस्वी अन्न (श्रियं अस्मे अधि नि धेहि) बल या धन दो ॥ ७ ॥

भावार्थ — खाने, पीने, दवा देने आदिका प्रबन्ध करनेवाली देवमाता अदिति है । खानपानकी व्यवस्था जो यथायोग्य और यथासमय करती है, वही रोगोंको दूर करने औषधको प्रदान करती है । मनुष्य, पशु, गायें, बालबच्चे इन सबके लिए खानपानका पथ्य आवश्यक है ॥ २ ॥

मित्र, वरुण, रुद्र तथा सब अन्य देव रोग दूर करते हैं । सूर्यकिरणोंसे, औषधिके रसोंसे, जलसे, विद्युत्से इसी तरह सब अन्य देवोंके सामर्थ्यसे रोग दूर होते हैं । मानवी जीवनको सुखमय करना इन्हीं देवोंके सामर्थ्यपर अवलम्बित है ॥३॥

वैद्य गाथाओंको जाने, क्योंकि पूर्वकालके लोगोंके अनुभव गाथामें लिखे रहते हैं, उन्हें जानना चाहिए । औषधियोंको परस्पर मिश्रण करनेका नाम 'मेध' है । किन औषधियोंको मिलानेसे क्या लाभ होते हैं, यह सब वैद्योंको जानना चाहिए । रोगको शान्त करनेवाले उपायका नाम 'शं' है और रोगबीज तथा अनिष्टभावको दूर करनेका नाम 'यु' है । इसीसे सुख होता है । मन प्रसन्न होता है ॥ ४ ॥

सूर्य वीर्यवर्धक है, सुवर्ण तेजस्विता बढानेवाला है, देवताओंमें जो मूल सत्त्व हैं, ये मनुष्योंको लाभ देनेवाले हैं ॥ ५ ॥

घोडे, भेड, मेढा, पुरुष, स्त्रियाँ और गाय आदिको स्वस्थ रखनेसे मनुष्य भी समृद्ध और ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ६ ॥

सोम आदि औषधियां सैंकडों मानवोंको पुष्ट करती हैं । यह सोमरूप अन्न भी वनस्पतिसे उत्पन्न होता है । बहुत अन्न खानेपर भी जिसका मन प्रसन्न नहीं होता, वह कभी सामर्थ्यशाली नहीं हो सकता, इसीलिए कहा है कि मनुष्यका मन भी उत्तम हो । जिसका मन समर्थ है, उसका शरीर भी समर्थ होता है ॥ ७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५१६ मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ॥ ८ ॥
५१७ यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥

[४४]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अग्निः, १-२ अग्निः, अश्विनौ, उषाश्च ।
छन्दः- प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

५१८ अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥
५१९ जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

अर्थ— [५१६] (सोमपरिबाधः नः मा जुहुरन्त) सोममें विघ्न करनेवाले शत्रु हमारा घातपात न करें (अरातयः मा) दुष्ट कंजूस भी हमें न सतावे (इन्दो) हे सोम ! (वाजे नः आ भज) हमारा बल बढाओ ॥ ८ ॥

[५१७] (सोम) हे सोम ! (परस्मिन् धामन्) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले (ऋतस्य अमृतस्य) सत्य और अमृतसे युक्त (ते याः आभूषन्तीः प्रजाः) ऐसे तेरी पूजा करनेवाली यह प्रजा (मूर्धा नाभा वेनः वेद) उच्च स्थानमें अपने ही घरमें बिराजे ॥ ९ ॥

[४४]

[५१८] हे (अमर्त्य जातवेदः अग्ने) अमर ज्ञानी अग्ने ! (त्वं उषसः विवस्वत्) तू उषाके साथ (चित्रं राधः दाशुषे आवह) अनेक प्रकारका तेजस्वी धन दाताको देनेके लिये ला और (अद्य उषर्बुधः देवान्) आज उषः-कालमें जागनेवाले देवोंको यहाँ ले आ ॥ १ ॥

१ उषर्बुधः देवाः— उषःकालमें जागनेनाले देव । उषःकालमें जागनेसे देवत्वकी प्राप्ति होती है ।

[५१९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (जुष्टः दूतः हव्यवाहनः) देवों द्वारा सेवित, दूत, हव्य लानेवाला (अध्वराणां रथीः असि हि) और हिंसारहित कर्मोंको निभानेवाला तथा रथवाला है । (अश्विभ्यां उषसा सजूः) अश्विदेवों और उषाके साथ (सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि) उत्तम वीर्य बढानेवाला बडा धन हमें ला ॥ २ ॥

१ सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि— उत्तम वीर्य, सामर्थ्य और पराक्रम बढानेवाला धन, अन्न और यश हमें मिले ।

२ अध्वराणां रथीः— हिंसा, कुटिलता, कपटता आदि कर्मोंको न करनेवालोंमें श्रेष्ठ ।

भावार्थ— सोम आदि वनस्पतियोंसे मिलनेवाले अन्नमें जो बाधा डालते हैं, वे मानवोंके शत्रु हैं । वे हमारे मार्गमें बाधा न डालें अर्थात् वनस्पतियां हमें पर्याप्त मात्रामें प्राप्त होती रहें । कंजूस भी हमारे बाधक न हों ॥ ८ ॥

यह सोम (उत्तम बुद्धि) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाली, सत्य और अमृतसे युक्त होती है । इस उत्तम बुद्धिकी उपासना करके जो बुद्धिशाली होता है, वह मनुष्य भी श्रेष्ठ स्थानमें जाकर विराजता है ॥ ९ ॥

यह अमर और सब कुछ जाननेवाला अग्रणी देव अनेक प्रकारका तेजस्वी धन दाताको देता है और उषःकालमें उठने-वाले देवोंको अपने साथ लाता है । उषःकालमें उठनेसे शरीरस्थ देव अर्थात् इन्द्रियोंकी शक्ति बढती है ॥ १ ॥

यह अग्रणी देव विद्वानों द्वारा सेवित, दूतकर्म करनेवाला और देवोंतक हव्य पहुंचानेवाला है । यह हिंसायुक्त कामोंमें कभी भी हिस्सा नहीं लेता । हिंसारहित काम करनेवालोंको यह उत्तम सामर्थ्य और यशयुक्त धन देता है ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५२० अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥
५२१ श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥
५२२ स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥
५२३ सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [५२०] (अद्य) आज हम (दूतं, वसुं, पुरुप्रियं, धूमकेतुं, भाऋजीकं) देवोंके दूत, सबके निवासके हेतु, सर्व प्रिय, धुएंकी ध्वजावाले, ज्वालाओंसे सुशोभित (व्युष्टिषु यज्ञानां अध्वरश्रियं अग्निं वृणीमहे) उषःकालमें अहिंसक यज्ञकर्मोंके कर्ता तथा उन यज्ञोंसे ऐश्वर्यको प्राप्त हुए हुए अग्निको स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

वसुः— सबको बसानेवाला । उष्णता देकर सबको जीवित रखनेवाला ।

[५२१] (व्युष्टिषु देवान् अच्छा यातवे) उषःकालोंमें देवोंकी ओर जानेके लिये (श्रेष्ठं, यविष्ठं, अतिथिं स्वाहुतं) श्रेष्ठ, अतिशय युवक, सदा गतिशील, सबसे बुलाये हुये (दाशुषे जनाय जुष्टं जातवेदसं अग्निं ईळे) दानशील यजमानके द्वारा सेवित और सर्वज्ञ अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

१ व्युष्टिषु देवान् यातवे— प्रातःकालमें देवोंको बुलाना चाहिए ।

२ जातवेदः— संसारमें जो भी उत्पन्न हुआ है, उसे जाननेवाला अथवा ज्ञान जिससे उत्पन्न हुआ है ।

[५२२] हे (अमृत, विश्वस्य भोजन, हव्यवाहन मियेध्य अग्ने) अमर, सबको भोजन देने हारे तथा हविको पहुँचानेवाले पवित्र अग्ने ! (त्रातारं अमृतं, यविष्ठं त्वां अहं स्तविष्यामि) विश्वके त्राणकर्ता, मरणरहित और सामर्थ्यवान् तेरी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

१ विश्वस्य भोजन— यह अग्नि ही सबको भोजन देता है । यदि वृक्ष वनस्पति औषधादियोंमें सूर्य अग्नितत्त्वका आधान न करे, तो सब विनष्ट हो जाए ।

२ त्रातारं अहं स्तविष्यामि— रक्षककी मैं प्रशंसा करता हूँ । जो वीर निर्बलोंकी रक्षा करता है, उसकी प्रशंसा होनी ही चाहिए ।

[५२३] हे (यविष्ठ्य) तरुण अग्ने ! (गृणते सुशंसः मधुजिह्वः स्वाहुतः बोधि) तू स्तोता यजमानके लिये स्तुतिका पात्र है, मधुर शिखाओंवाला तू उत्तम हवन होनेके पश्चात् हमारे अभिप्रायको समझ । (प्रस्कण्वस्य जीवसे आयुः प्रतिरन् दैव्यं जनं नमस्य) प्रस्कण्वके दीर्घ जीवनके लिये आयु बढाता हुआ तू दिव्य मानवको सम्मान दे ॥ ६ ॥

१ मधुजिह्वः— घृतादि मधुर पदार्थोंको अपनी जीभ अर्थात् ज्वालाओंसे चाटनेवाला । अथवा हमेशा मधुर वाणी बोलनेवाला ज्ञानी ।

२ दैव्यं जनं नमस्य— दिव्य अर्थात् उत्तम गुणवालोंकी हमेशा पूजा करनी चाहिए ।

भावार्थ— यह अग्नि सबको बसानेवाला, सर्व प्रिय, उषःकालमें होनेवाले यज्ञोंकी ज्वालासे शोभित और ऐश्वर्ययुक्त है । ऐसे अग्निको सब चाहते हैं । अर्थात् प्रत्येकके घरमें यज्ञ होने चाहिए ॥ ३ ॥

देवत्वको प्राप्त करनेके लिए मैं श्रेष्ठ, बलशाली, दानियों द्वारा सेवित अग्निकी स्तुति करता हूँ । अग्नि अर्थात् ज्ञानीकी उपासना अर्थात् उसके पास बैठनेसे ही मनुष्य देवत्व प्राप्त कर सकता है ॥ ४ ॥

अमर, सबको जीवन देनेवाले, हवियोंको ले जानेवाले, पवित्र तथा दूसरोंकी रक्षा करनेवाले अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ ५ ॥

यह अग्रणी मीठी वाणी बोलनेवाला, सबके मनोगतोंको जाननेवाला कण्व अर्थात् ज्ञानियोंको दीर्घायु देनेवाला और उत्तम गुणोंसे युक्त है । ऐसे अग्रणीका सबको सम्मान करना चाहिए ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५२४ होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसो ऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥
५२५ सवितारमुषसमश्विना भग— मग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥
५२६ पतिर्ह्यध्वराणा— मग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥
५२७ अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्ववि‍ता पुरोहितो ऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥

अर्थ— [५२४] (होतारं विश्ववेदसं त्वा) हवन करनेवाले सर्वज्ञ तुझको (विशः हि सं इन्धते) सब प्रजायें निश्चयसे प्रदीप्त करती हैं। हे (पुरुहूत अग्ने) बहुतोंसे बुलाये गये अग्ने ! (सः प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आवह) वह प्रसिद्ध तू प्रकृष्ट ज्ञानसे युक्त देवोंको यहाँ इस यज्ञकर्ममें दौडते हुये शीघ्र ले आ ॥ ७ ॥

१ विश्ववेदसं विशः सं इन्धते— सर्वज्ञ इस अग्निको सब प्रजायें प्रदीप्त करती हैं। सब प्रजाजनोंके घरोंमें हवन होना चाहिए।

[५२५] हे (स्वध्वर) शोभन यज्ञके कर्ता अग्ने ! (क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उषसं अश्विना भगं अग्निं) रात्रीके अनन्तर उषःकालमें सविता, उषा, दोनों अश्विनीकुमारों, भग और अग्निको यहाँ ले आ। (सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा इन्धते) सोम तैयार किये हुये ज्ञानी लोग हवियोंको पहुँचानेवाले तुझको प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

[५२६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि) प्रजाओंके यज्ञका पालक और देवोंका दूत है। (उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह) उषःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी देवोंको आज सोमपान करनेके लिये ले आ ॥ ९ ॥

१ उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान्— उषःकालमें जागनेवाले तथा आत्मसाक्षात्कारी ज्ञानियोंको 'देव' कहते हैं।

[५२७] हे (विभावसो अग्ने) विशेष तेजस्वी अग्ने ! (विश्वदर्शतः पूर्वाः उषसः अनु दीदेथ) विश्वमें दर्शनीय ऐसा तू उषासे पहले प्रदीप्त होता है। तू (ग्रामेषु अविता असि) ग्रामोंमें रक्षक है, और (यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि) यज्ञोंमें, मनुष्योंका अग्रगामी नेता है ॥ १० ॥

१ उषसः पूर्वाः अनु दीदेथ— यह अग्रणी उषासे पहले प्रदीप्त किया जाता है। उषःकालसे पूर्व उठनेवाला तेजस्वी होता है।

२ ग्रामेषु अविता असि— यह अग्रणीनेता अपने ग्रामका रक्षक होता है। हर अग्रणी नेताको अपने अपने ग्रामकी रक्षा करनी चाहिए।

भावार्थ— क्योंकि यह ज्ञानी अग्रणी देव सब देवोंको बुलाकर लाता है, इसलिए सभी प्रजायें उसे प्रदीप्त करती हैं ॥७॥

उषःकालमें अग्नि सविता, उषा, अश्विनीकुमार आदि सब देवताओंको बुलाकर लाता है। इसलिए सबेरे सबेरे ज्ञानीजन सोम तैयार करके इस अग्निको प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

यह अग्रणी यज्ञोंका स्वामी है। यह उषःकालमें जागनेवाले और आत्मसाक्षात्कारी देवोंको सोमयज्ञमें बुलाकर लाता है। आत्मचिन्तनका सर्वोत्तमकाल उषःकाल या ब्राह्ममुहूर्त है, इसी समय ज्ञानीजन आत्मचिन्तन करते हैं। मनुस्मृतिमें भी कहा है— ॥ ९ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत, धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥

'मनुष्य ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर, धर्म, अर्थ, कायक्लेश और उनके कारण तथा वेदोंके तत्त्वोंका चिन्तन करे।'

प्राचीनकालमें उषःकालसे पहले यज्ञ प्रारम्भ हो जाते थे, अतः उषासे पूर्व ही इस तेजस्वी अग्निको प्रकट करते थे। यह यज्ञाग्नि जिस जिस ग्राममें जलाई जाती है, वहां वहांके रोगजन्तुओंको नष्ट करके यह अग्नि उस ग्रामकी रक्षा करती है। इसीलिए यज्ञमें इसे सर्वप्रथम प्रदीप्त किया जाता है ॥ १० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५२८ नि त्वां यज्ञस्य साधन—मग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥

५२९ यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो ऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२ ॥

५३० श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभि—र्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

५३१ शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतो ऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥

अर्थ— [५२८] हे (अग्ने देव) अग्नि देव ! हम (मनुष्वत् त्वा) मनुष्योंकी तरह तुझको (यज्ञस्य साधनं होतारं ऋत्विजं, प्रचेतसं) यज्ञके साधन, होता, याजक, ज्ञानी, (जीरं, अमर्त्यं दूतं नि धीमहि) वृद्ध अमर दूतके रूपमें यहाँ स्थापित करते हैं ॥ ११ ॥

[५२९] हे (मित्रमहः) मित्रोंमें पूजनीय अग्ने ! तू (यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि) जब यज्ञके पुरोहित रूपमें देवोंके बीचमें दूतकर्म करनेके लिये जाता है, तब (सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव) समुद्रके प्रचण्ड ध्वनि करनेवाली लहरोंके सदृश (अग्नेः अर्चयः भ्राजन्ते) तुझ अग्निकी ज्वालायें प्रदीप्त होती हैं ॥ १२ ॥

[५३०] हे (श्रुत्कर्ण अग्ने) सुननेमें समर्थ कानोंवाले अग्ने (श्रुधि) हमारे कथनको सुन ले । (प्रातर्यावाणः मित्रः, अर्यमा, वह्निभिः सयावभिः देवैः) प्रातःकालमें जानेवाले मित्र और अर्यमा तथा तेजस्वी रथोंसे जानेवाले देवोंके साथ (अध्वरं बर्हिषि आ सीदन्तु) हिंसारहित यज्ञमें आसनपर आकर विराजमान होवें ॥ १३ ॥

[५३१] (सुदानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु) उत्तमदानी, अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञ कर्मकी वृद्धि करनेवाले मरुत् वीर इस स्तोत्रको सुनें । तथा (धृतव्रतः वरुणः) व्रतपालन करनेवाला वरुण (अश्विभ्यां उषसा सजूः सोमं पिबतु) अश्विनीकुमारों और उषाके साथ सोम रसका पान करे ॥ १४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि यज्ञका साधन, होता, ज्ञानी और सबसे महान् और अमर है ॥ ११ ॥

जब देवताओंको हवि पहुंचानेके उद्देश्यसे यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती है, तब उसकी ज्वालायें समुद्रकी लहरोंकी तरह आकाशमें बहुत ऊंची उठती हैं ॥ १२ ॥

यह अग्रणी देव सबकी प्रार्थनाओंको ध्यानसे सुनता है और सब देवोंके साथ मनुष्यके श्रेष्ठ कर्मोंमें सहायक होता है। उसी प्रकार अग्रणी नेता भी अपनी प्रजाओंकी प्रार्थनायें सुने और तदनुसार उनकी सहायता करे ॥ १३ ॥

उत्तम दानी मरुत् गण हमारी प्रार्थना सुनें, तथा व्रतके पालक वरुण एवं अश्विनीकुमार आदि देव भी हमारे यज्ञमें आवें ॥ १४ ॥

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[४५]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अग्निः, १० (उत्तरार्धस्य) देवाः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

५३२ त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ १ ॥

५३३ श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः । तान् रोहिदश्व गिर्वणस् त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥

५३४ प्रियमेधवदत्रिवज् जातवेदो विरूपवत् । अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥

५३५ महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत । राजन्तमध्वराणा मग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥

---

[४५]

अर्थ— [५३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं इह वसून् रुद्रान् आदित्यान् यज) तू यहाँ वसुओं, रुद्रों और आदित्योंकी सन्तुष्टिके लिये यज्ञ कर । (उत स्वध्वरं घृतप्रुषं मनुजातं जनं आयज) तथा उत्तम यज्ञ करनेवाले एवं घृताहुति देनेवाले मनुसे उत्पन्न हुये मानवोंकी सन्तुष्टिके लिये भी यज्ञ कर ॥ १ ॥

१ वसून् रुद्रान् आदित्यान् इह यज— वसु, रुद्र और आदित्योंके लिए यजन कर। अर्थात् इनकी प्रसन्नताके लिए यज्ञ करना चाहिए । इनके प्रसन्न रहनेपर स्वास्थ्य उत्तम रहेगा ।

२ जनं यज— मनुष्य मात्रके हितके लिए यज्ञ करना चाहिए ।

[५३३] हे (अग्ने) अग्ने ! (विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि) विशेष ज्ञानसम्पन्न देवता लोग दाताके लिये उत्तम फल देते ही हैं । हे (रोहिदश्व, गिर्वणः) लाल रङ्गके घोडेवाले, स्तुति योग्य अग्ने ! (त्रयस्त्रिंशतं तान् आ वह) उन तैंतीस देवोंको तू यहाँ ले आ ॥ २ ॥

१ विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि— विशेष ज्ञान सम्पन्न देव दाताको उत्तम फल देते ही हैं ।

[५३४] हे (महिव्रत जातवेदः) महान् कर्म करनेवाले ज्ञानी अग्ने ! (प्रियमेधवत् अत्रिवत् विरूपवत् अङ्गिरस्वत् प्रस्कण्वस्य हवं श्रुधि) तूने जैसी प्रियमेध, अत्रि, विरूप और अङ्गिरसकी प्रार्थनाएँ सुनी थीं, वैसी प्रस्कण्वकी भी प्रार्थना श्रवण कर ॥ ३ ॥

प्रियमेधाः— बुद्धिपूर्वक कार्य करना जिसे प्रिय है ।

अत्रिः— (अतति) जो भ्रमण करता है ।

विरूपः— विशेष रूपवान् ।

अंगिराः— अंगरस–चिकित्सा–विद्याका ज्ञाता ।

प्रस्कण्वः— विशेष व्याख्याता ' कण्–शब्दे ' ।

[५३५] (महिकेरवः प्रियमेधाः) महान् कर्म करनेवाले प्रियमेध ऋषियोंने (अध्वराणां शुक्रेण शोचिषा राजन्तं अग्निं ऊतये अहूषत) यज्ञोंके मध्यमें पवित्र प्रकाश और तेजस्वी हुये अग्निकी अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४ ॥

१ प्रियमेधाः महिकेरवः ऊतये अग्निं अहूषत— बुद्धिपूर्वक महान् कार्य करनेवालोंने अपनी रक्षाके लिए अग्रणीको बुलाया । ऐसोंकी अग्नि सहायता करता है ।

भावार्थ— यह अग्रणी देवोंको प्रसन्न करनेके लिए यज्ञ करता है, इस यज्ञसे मानवोंका स्वास्थ्य उत्तम रहता है, इसलिए यज्ञ एक उपयोगी कार्य है ॥ १ ॥

विद्वान् तथा दिव्य गुण सम्पन्न देव दाताको सदा सुखी रखते हैं और उसके हर कार्यमें ३३ देव सहायक होते हैं ॥ २ ॥

यह अग्रणी देव बुद्धिसे कार्य करनेवाले ज्ञान प्रसार करते हुए सर्वत्र घूमनेवाले अंगरस् चिकित्साके ज्ञाता तथा ज्ञानी पुरुषकी प्रार्थना सुनता है और उसकी सहायता करता है ॥ ३ ॥

महान् कर्म करनेवाले बुद्धिमान् ऋषियोंने रक्षाके लिए अग्निसे प्रार्थना की ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५३६ घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः। याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥५॥
५३७ त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः। शोचिष्केशं पुरुप्रियाऽग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥६॥
५३८ नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम्। श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥७॥
५३९ आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः।
बृहद् भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ॥८॥
५४० प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य। इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥९॥

अर्थ— [५३६] हे (घृताहवन सन्त्य) घृतकी आहुतियाँ लेनेवाले दाता अग्ने! (कण्वस्य सूनवः याभिः अवसे त्वा हवन्ते) कण्वके पुत्र जिनसे सबकी सुरक्षाके लिये तेरी प्रार्थना करते हैं, उन (इमा उ गिरः सुश्रुधि) इन प्रार्थनाओंको भली प्रकार सुन ॥ ५ ॥

१ सन्त्य— दाता।

[५३७] हे (चित्र श्रवस्तम पुरुप्रिय अग्ने) विलक्षण यशवाले और सबके प्रिय अग्ने! (शोचिष्केशं त्वां) तेजस्वी किरणवाले तुझको (हव्याय वोह्ळवे) हव्य वहन करनेके लिये (विक्षु जन्तवः हवन्ते) प्रजाओंमें सब प्राणी बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ शोचिष्केशः— ज्वालायें ही इस अग्निके बाल हैं। शुद्ध प्रकाशसे युक्त।

२ जन्तवः हवन्ते— इस अग्रणीको सब प्राणी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

[५३८] हे (अग्ने) अग्ने! (विप्राः दिविष्टिषु) ज्ञानी लोग यज्ञोंमें (होतारं ऋत्विजं वसुवित्तमं) देवोंको बुलाने हारे, ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाले, बहुत धनके दाता, (श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा नि दधिरे) प्रार्थना सुननेमें तत्पर और सर्वत्र प्रसिद्ध ऐसे तुम्हें स्थापित करते हैं ॥ ७ ॥

१ ऋत्विज्— (ऋतु-यज्) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाला।

२ श्रुत्कर्ण— जो लोगोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी हर तरहसे सहायता करता है।

३ सप्रथस्तमः— सर्वत्र अत्यन्त प्रसिद्ध।

[५३९] हे (अग्ने) अग्ने! (दाशुषे मर्ताय हविः बिभ्रतः) दानशील मनुष्यके लिये हव्य धारण किये हुये, (सुतसोमाः विप्राः प्रयः अभि) सोमरसको तैयार करनेवाले बुद्धिमान् लोग अन्नके पास (बृहत् भाः त्वा अचुच्यवुः) महान् तेजस्वी तुझको बुलाते हैं ॥ ८ ॥

१ बृहत् भाः— अत्यन्त तेजस्वी।

[५४०] हे (सहस्कृत, सन्त्य, वसो) बलके उत्पन्नकर्ता, दानशील तथा सबके निवासक अग्ने! (इह अद्य सोमपेयाय) यहाँ आज सोमपानके लिये (प्रातर्याव्णः दैव्यं जनं बर्हिः आ सादय) प्रातःकाल हीमें आनेवाले दिव्य विबुधोंको इन आसनों पर लाकर बिठला ॥ ९ ॥

भावार्थ— वह अग्रणी विद्वानोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी हर प्रकारसे सहायता करता है। वह हमारी भी प्रार्थना सुने ॥ ५ ॥

ज्वालाओंके बालोंसे युक्त इस अग्रणीका सम्मान करनेके लिए सब बुलाते हैं ॥ ६ ॥

यह अग्रणी देवोंको बुलाकर लानेवाला, प्रार्थनाओंको ध्यानसे सुननेवाला, धन ऐश्वर्यादिको देनेवाला है, ऐसे इसको ज्ञानी जन यज्ञमें प्रज्ज्वलित करते हैं ॥ ७ ॥

दानशील मनुष्यके सुखके लिए बुद्धिमान् होता सोमरस तैय्यार करके अग्निको अन्नके पास बुलाते हैं ॥ ८ ॥

यह अग्नि सबको जीवन देनेवाला, बल देनेवाला तथा सोमपानके लिए प्रातःकालमें उठनेवाले दिव्य गुण युक्त ज्ञानियोंको यज्ञमें लानेवाला है ॥ ९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५४१ अर्वाञ्चं दैव्यं जन मग्ने यक्ष्व सहूतिभिः । अयं सोमः सुदानवस् तं पात तिरोअह्न्यम् ॥ १० ॥

[४६]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- गायत्री ।)

५४२ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

५४३ या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥

५४४ वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥

५४५ हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥

अर्थ—[५४१] हे (अग्ने) अग्ने (अर्वाञ्चं दैव्यं जनं सहूतिभिः यक्ष्व) पास आये दिव्य जनोंका उत्तम भाषणके साथ आदरपूर्वक यजन कर । हे (सुदानवः) दानशीलो ! (अयं सोमः तं तिरो अह्न्यं पात) यह सोमरस है, गत दिवस तैयार किया गया है उसका पान कर ॥ १० ॥

[४६]

[५४२] हे अश्विदेवो ! (एषा प्रिया) यह प्रिय (अपूर्व्या उषाः) अपूर्वसी दीखनेवाली उषा (दिवः व्युच्छति) द्युलोकसे आती है । अर्थात् अन्धकार दूर करती है । इस समय (वां बृहत् स्तुषे) तुम दोनोंकी मैं बहुत स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[५४३] (या देवा, दस्रा) जो तुम दोनों देवतारूपी, शत्रुविनाशकर्ता (सिन्धु-मातरा, रयीणां मनो-तरा) नदीको माता समझनेवाले, धनोंको मनसोक्त देनेहारे तथा (धिया वसुविदा) कर्म और बुद्धिके अनुसार धनको देनेहारे हो ॥ २ ॥

[५४४] (वां रथः) तुम दोनोंका रथ (यत् विभिः पतात्) जिस समय पक्षिके सदृश उडने लगता है, तब (जूर्णायां) प्रशंसाके योग्य (अधि विष्टपि) द्युलोकमें भी (वां ककुहासः वच्यन्ते) तुम दोनोंके प्रधान कर्मोंका वर्णन किया जाता है ॥ ३ ॥

[५४५] हे (नरा !) नेताओ ! (अपां जारः) जलोंको सुखानेवाला (पपुरिः पिता) पोषणकर्ता पिता (कुटस्य चर्षणिः) किये हुए कार्योंका निरीक्षक सूर्य (हविषा पिपर्ति) हविसे आपको संतुष्ट करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— घरमें आए हुए दिव्य अर्थात् उत्तम गुणोंसे विभूषित मनुष्योंका मीठी बोलीसे सदा सत्कार करना चाहिए । ताकि उसके यहां विद्वान् बैठकर आनन्दसे सोमरसका पान करें ॥ १० ॥

उषा आकर अन्धकारको दूर करती है । हे अश्वि देवो ! इस समय मैं आपकी स्तुति करता हूं । मनुष्यको अपना अज्ञान दूर करना चाहिये ॥ १ ॥

अश्विदेव शत्रुका नाश करनेवाले, धनका दान करनेवाले नदीको माता माननेवाले और कर्म करनेकी योग्यतानुसार धन देनेवाले हैं । मनुष्य अपने शत्रुको दूर करें, धनका दान करें, जो जैसा कर्म करेगा वैसा धन उस कर्मकी योग्यतानुसार उसको देता रहे, अधिक कर्म कराकर थोडा धन न देवे, अपने देशकी नदियोंकी माताके समान सुरक्षा करें । क्योंकि उनसे धान्य उत्पन्न होकर मानवोंका पोषण होता है ॥ २ ॥

अश्विदेवोंका रथ पक्षीके सदृश आकाशमें उडने लगता है, तब स्वर्गमें भी उसकी प्रशंसा होती है । (यह रथ विमान ही है ।) आकाशमें गमन करनेके लिये आकाशगामी रथ (विमान) मनुष्य बनावें । यह कर्म प्रशंसा योग्य है ॥ ३ ॥

जलको सुखानेवाला, सबका पोषक, कृत कर्मोंको देखनेवाला पिता सूर्य अश्विदेवोंको अन्नसे सन्तुष्ट करता है । मनुष्य अन्न उत्पन्न करें, उससे यज्ञ करें, अनुयायियोंका पोषण करें, अनुयायियोंके लिये कर्मोंका निरीक्षण करें और योग्यतानुसार उनको धन आदि देवे ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५४६ आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥
५४७ या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥
५४८ आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥
५४९ अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥
५५० दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥
५५१ अभूदु भा उं अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥

अर्थ— [५४६] (मत-वचसा नासत्या) हे मननपूर्वक भाषण करनेहारे तथा असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवो! यह (वां मतीनां आदारः) तुम दोनोंकी बुद्धियोंकी प्रेरणा करनेवाला है, (धृष्णुया सोमस्य पातं) धर्षक शक्ति देनेवाले सोमका पान करो ॥ ५ ॥

[५४७] हे अश्विदेवो ! (या ज्योतिष्मती) जो प्रकाशसे पूर्ण होकर (तमः तिरः) अँधियारीको दूर हटाकर (नः पीपरत्) हमें पुष्ट करता है, (तां इषं) उस अन्नको (अस्मे रासाथां) हमें दे दो ॥ ६ ॥

[५४८] हे अश्विदेवो ! (रथं युञ्जाथां) तुम दोनों अपना रथ जोतो, (पाराय गन्तवे) पार चले जानेके लिये (नः मतीनां) हमारी बुद्धिपूर्वक रची हुई (नावा आयातं) नौकासे आओ ॥ ७ ॥

[५४९] (सिन्धुनां तीर्थे) नदियोंकी उतराईके स्थानपर (वां अरित्रं) तुम दोनोंकी बल्ली या नाव खेनेका डंडा (दिवः पृथु) द्युलोक जैसा विस्तीर्ण है, (रथः) तुम दोनोंका रथ भी तैयार है, यहां वे (इन्द्रवः धिया युयुज्रे) सोमरस कुशलतासे तैयार किये हैं ॥ ८ ॥

[५५०] (कण्वासः) हे कण्वपरिवारके लोगो ! (दिवः इन्दवः) द्युलोकसे सोमरस लाये हैं । (सिन्धूनां पदे वसु) नदियोंके तटपर धन है, अब (स्वं वव्रिं) अपने स्वरूपको (कुह धित्सथः) भला तुम दोनों किधर रखना चाहते हो ? ॥ ९ ॥

[५५१] (भाः अंशवे) यह आभा सोमके लिये ही (अभूत् उ) प्रकट हुई है, (सूर्यः हिरण्यं प्रति) सूर्य सुवर्ण तुल्य प्रकाशसे युक्त हो रहा है; (अ-सितः) कुछ फीकासा पडा हुआ अग्नि (जिह्वया वि अख्यत्) अपनी ज्वालासे विशेषतया प्रकाशमान हो चुका है ॥ १० ॥

भावार्थ— अश्विदेव मननपूर्वक भाषण करते हैं, वे सोमरस पीते हैं जो वीरत्वके उत्साहको बढाता है । मनुष्य भाषण करनेके पूर्व मनन करे और अपना वक्तव्य निश्चित करें और उतना ही बोले । बलवर्धक रसोंका पान करें ॥ ५ ॥

अश्विदेव ऐसा अन्न देते हैं, जो हमें प्रकाश देगा, अन्धकार दूर करेगा और हमारा पालन भी करेगा । मनुष्य अपने अज्ञानान्धकारको दूर करें, ज्ञानके प्रकाशको प्राप्त करें और उत्तम पुष्टि देनेवाला अन्न प्राप्त करें ॥ ६ ॥

समुद्रको पार करके आना हो तो नौकासे आवें, ये नौकाएं उत्तम बुद्धिसे तैयार की हैं। भूमि परसे रथ जोड कर आओ। मनुष्य समुद्र पार करनेके लिये उत्तमसे उत्तम नौकायें तैयार करे और भूमीपर संचार करनेके लिये उत्तम रथ तैयार करे ॥७॥

नदियोंमें जहां उतार होता है, वहां अच्छी विस्तीर्ण बल्लियां तैयार हैं, भूमि पर रथ भी तैयार है, यहां सोमरस भी तैयार रखे हैं। नदियोंके उतारके स्थानपर नौका रखनेके लिये आवश्यक साधन रहें, मनुष्योंके लिये रथ भी वहाँ रहें और खानपानका भी सतत प्रबंध रहे ॥ ८ ॥

पर्वतके शिखर परसे सोम लाकर तयार रखा है, नदीपार होनेपर यहां धन भी बहुत है । हे बुद्धिमानो ! आप अब कहां जायेंगे ? पर्वतपरसे औषधियां लाकर उनके रस पीनेके लिये तैयार करो । समुद्रके पार जाकर धन भी कमाओ ॥ ९ ॥

सोमका रस तैयार करनेके लिये ही यह उषाका प्रकाश हुआ है, इसीलिये सूर्य प्रकाशित हुआ है, अग्नि भी इसीलिये प्रदीप्त हुआ है । सोम, सूर्य और अग्नि मनुष्योंकी सहायता करनेके लिये सिद्ध हैं (अर्थात् मनुष्य पुरुषार्थ करके उनसे सुख प्राप्त करे) ॥ १० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५५२ अभूंदु पारमेतंवे पन्था ऋतस्यं साधुया । अदंर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥

५५३ तत्तदिदुश्विनोरवों जरिता प्रति भूषति । मदे सोमंस्य पिप्रंतोः ॥ १२ ॥

५५४ वावसाना विवस्वति सोमंस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छंभू आ गंतम् ॥ १३ ॥

५५५ युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋता वंनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥

५५६ उभा पिंबतमश्विनो॒भा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥

अर्थ— [५५२] (ऋतस्य पन्थाः) यज्ञका मार्ग (पारं एतवे) दुःखके पार होनेके लिए (साधुया अभूत् उ) अच्छा बन चुका है । (दिवः) द्युलोकसे (विस्रुतिः अदर्शि) विशेष प्रकाशकी प्रभा दीख पडी है ॥ ११ ॥

[५५३] (सोमस्य मदे) सोमरसके सेवनसे उत्पन्न हर्षमें (पिप्रतोः अश्विनोः) जनताको सन्तुष्ट रखनेवाले अश्विदेवोंके (तत् तत्) उसी (अवः इत्) संरक्षणको (जरिता प्रति भूषति) स्तोता अच्छे ढंगसे वर्णित करता है ॥ १२ ॥

[५५४] हे (शंभू) सुख देनेवाले और (मनुष्यत् विवस्वति) मनुके समान विशेष सेवा करनेवालेके समीप (वावसाना) रहनेकी इच्छा करनेवाले अश्विदेवो ! (गिरा) हमारे भाषणसे आकर्षित होकर (सोमस्य पीत्या) सोम-पान करनेके निमित्त (आगतं) इधर आओ ॥ १३ ॥

[५५५] (परिज्मनोः युवोः) चारों ओर घूमनेवालों तुम दोनोंकी (श्रियं अनु) शोभाके पीछे पीछे (उषा उपाचरत्) उषा प्रकट हो समीप संचार कर रही है; (अक्तुभिः) रात्रियोंमें (ऋता वनथः) तुम दोनों यज्ञोंका सेवन करते हो ॥ १४ ॥

[५५६] हे अश्विदेवो ! (उभा पिबतं) तुम दोनों सोमपान करो, (अविद्रियाभिः ऊतिभिः) निरलस रक्षा-ओंकी आयोजनाओंके साथ (उभा) तुम दोनों (नः शर्म यच्छतं) हमें सुख दे दो ॥ १५ ॥

भावार्थ— दुःखसे पार होनेके लिए यह यज्ञका मार्ग उत्तम रीतिसे बन गया है । मानो यह स्वर्गसे प्रकाश ही आया है । मनुष्योंके दुःख दूर करनेके लिये यह यज्ञका मार्ग बडा ही सरल मार्ग है । इसमें किसी तरहके कष्ट नहीं हैं । यह स्वर्गका ही मार्ग है ॥ ११ ॥

अश्विदेव सोम पीकर आनन्दित होते और जनताको संतुष्ट करके उनकी सुरक्षा करते हैं । इसकी स्तुति सभी करते हैं । मनुष्य स्वयं आनन्द प्रसन्न रहें, अन्योंको संतुष्ट करें और जनताकी उत्तम रक्षा रहें, यही प्रशंसनीय कार्य है ।

अश्विदेव सबको सुख देते और अनुयायियोंके संगमें रहते हैं । वे सोमपानके लिये यहां आवें । नेता अनुयायियोंको सुख देवे, उनके साथ रहे, उनसे पृथक् न रहे । वनस्पतियोंके मधुर रसोंका पान करे ॥ १३ ॥

उषःकालके पूर्व अश्विदेव चारों ओर भ्रमण करते हैं । और रात्रीके समयमें भी यज्ञोंको देखते हैं । नेता लोग अनु-यायियोंके पूर्व ही उठकर चारों ओरके सब कर्मोंकी अच्छी तरह देखभाल करें । रात्रीके समयमें भी निरीक्षण करें ॥ १४ ॥

अश्विदेव सोमपान करें और निरलस रक्षाओंसे सबको सुख देदें । नेता लोग आलस्य छोडकर अनुयायियोंकी रक्षा करें और उनको सुखी करें । वनस्पतियोंके रसोंका पान करें ॥ १५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd. No. G. 71

'संसारके पुस्तकालयमें ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रंथ है'। संसारका ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो ऋग्वेदमें न हो। दार्शनिक, भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांसारिक आदि सभी विषयोंका समावेश ऋग्वेदमें है। अतः—

यदि आप जानना चाहते हैं

कि

(१) ऋग्वैदिक दार्शनिकता क्या है?
(२) ऋग्वैदिक समाजशास्त्र क्या है?
(३) ऋग्वैदिक भौतिकशास्त्र कैसा है?
(४) ऋग्वैदिक अध्यात्मविद्या क्या है?
(५) ऋग्वेदका सारांश क्या है?

तो अवश्य ग्राहक बनिये—

म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर कृत

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(चार भागोंमें)

प्रकाशन कार्य आरंभ हो गया है। मंत्र, अर्थ, भावार्थ तथा हर मण्डलके अन्तमें उस मंडल का सारांश एवं कठिनस्थलोंका स्पष्टीकरण सभी कुछ पठनीय होगा। साइज– डबल क्राऊन ८ पेजी, सुन्दर कागज, पृष्ठ संख्या २५०० से ज्यादा, मूल्य मात्र २०) रु. प्रत्येक भाग, पर—

(१) जो पेशगी धन भेज कर इस ग्रंथके ग्राहक होंगे, उन्हें केवल ६०) में चारों भाग मिल सकेंगे।

(२) जो ग्राहक चारों भाग एक साथ खरीदेंगे, उन्हें इस ग्रंथके कुल मूल्य ८०) रु. पर २० % कमीशन दिया जाएगा।

(३) जो इस ग्रंथके कम से कम ७ ग्राहक बनायेंगे उन्हें लेखकके हस्ताक्षरके साथ चारों भाग मुफ्त भेंटस्वरूप दिए जाएंगे।

विशेष विवरणके लिए लिखें—

व्यवस्थापक—
स्वाध्याय-मण्डल पारडी,
पोस्ट– 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी),' पारडी [जि. बलसार]

मुद्रक और प्रकाशक– व. श्री. सातवलेकर, भारत मुद्रणालय, पो. 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu